वेदान्त मंजरी

(प्रकृति निर्माण का रहस्य)

★

लेखक व प्रकाशक

आचार्य स्वामी आनन्द पुरी

★

★

दत्तावाड़ा उज्जैन

(मध्य भारत)

मूल्य २) रु०

वेदान्त मंजरी

(प्रकृति निर्माण का रहस्य)

★

लेखक व प्रकाशक

आचार्य स्वामी आनन्द पुरी

दत्तारवाड़ा उज्जैन
(मध्य भारत)

मूल्य २)रु०

समर्पणम्

वेदान्त रहस्य के अन्वेषक अपने
पुरुषार्थ से संसार के लिये
विशेष रचनाओं को बनाने वाले
जिज्ञासु भक्तों के हाथों में यह
मञ्जरी सादर भेंट

———

दो शब्द

इस मञ्जरी का स्पर्श खण्डन व विवाद
के लिए न करो, लेखक के
पाण्डित्य निरीक्षण के लिये
भी इसे न देखो केवल शुद्ध
भावना और अपने जन्म
के सत्य अभिनय के
लिये इसका मनन-
पठन और
अभ्यास नित्य
करो।

"वेदान्त मञ्जरी के निर्माता"

आचार्य स्वामी आनन्द पुरी

★

भूमिका

मेरे पर विद्या का अभ्यास और मनन करने वाले मनुष्यों ईश्वर ने आपको अपना स्वरूप और अपरिमेय शक्ति देकर ईश्वरीय प्रबन्ध और नियमों का पालन कराने के लिए संसार में सब साधनों के साथ भेजा है किन्तु कृत्रिम सौंदर्य के प्रलोभनों और क्षणिक आनन्द के भावों द्वारा मानव अपनी मानवता को नष्ट कर बैठता है इसलिए किंचित् संबोधन के लिये मैंने कुछ प्रयास किया है मनुष्य सदा अमृत का पुत्र है वह अपनी अनन्त विभूतियों से उपास्य हो सकता है संसार के प्रत्येक तत्व इसी अमृत के पुत्र के संकेत से कार्य की पूर्णता को प्राप्त करते हैं यदि जीव जीवित मनुष्यों की संख्या में आ जाता है तो जीव ही सब सौम्य व्यवस्थाओं का पालन करता हुआ ब्रह्म का निदर्शन बनता है सदा ही मानवता का केन्द्र बन कर जीव पूर्ण ध्येय के साथ उच्चाभिलाषा की पूर्ति जगत् में करता हुआ अपने जीवन को कला का रूप देता हुआ ब्रह्म की नाईं अव्यक्त गुणों को व्यक्त करता है जीव आत्मप्रेरणा और पूर्ण परिश्रम के

साथ ईश्वरीय धर्म में सफलता प्राप्त करता हुआ सदाचार को नींव डालता है. मन इन्द्रियों की स्वास्थता बुध्दि की पवित्रता जीव का वेदान्त का रूप दिखाती है जिससे जीव अपनी सत्ता से और आत्मनिष्ठा से कार्य करा सकता है इस समय उस जीव की कितनी आवश्यकता है यह आप जानते ही हैं जब भी संसार ने अध्यात्मवाद को छोड़ दिया तब ही संसार चरित्र की धारा को प्रतिकूल समझ कर सर्वस्व खो बैठा है आत्म विश्वास के अभाव से प्रत्येक पुरुष के कार्यों में बाधा का सामना करना पड़ता है आत्म निष्ठा के कारण असम्भव कार्यों को पुरुषों ने सम्भव और सरल बनाया है इस लिये जीव कुसंस्कारों को छोड़ शोक-संघर्ष और विपत्ति के कारणों को समझ कर जीव अपने विचारों से अपने को उन्नत करने का प्रयत्न करे जीव सदा ही अपनी असीम शक्तियों को जान कर आत्म शुध्दि---आत्मशोध को ओर जाता है अपनी उच्छृङ्खल वृत्तियों को केन्द्र में करने से जीव अपनी शक्तियों का उपयोग करता है और संसार के लिये अपनी अनन्त शक्तियों से स्वयं ही प्रदान करता है सदा विषयों का वह नियन्त्रण करता हुआ समयानुसार उन्हें उपयोगी भी बनाता है जीव क्षणिक संघर्षों का और आनन्द के भावों का विश्लेषण करता हुआ संसार के लिए

सुविधा बनाता है व्यसनी और चिंतित रहने वाला जीव संसार के सौंदर्य का उपयोग न करके राग द्वेष के आवर्त में गिर जाता है इसी कारण जीव की आवश्यकता बढ़ जाती है आवश्यकता की पूर्ति न करके जीव भ्रान्त बन जाता है जिस परिणाम से जीव के कर्तव्यों में अराजकता और पशुता बढ़ती है इसी भाव को रोकने के लिए मैं ने वेदान्त मंजरी का लिखना आरम्भ किया है मैं जानता हूं यह अध्यात्मवाद का विषय अनुभवियों-तपस्वियों का है किन्तु स्वल्प बुद्धि के साथ स्वयं सेवक भाव से लिखा गया यह खिलवाड़! विद्वानों को प्रसन्न करे जीव ने जब भी आत्मोन्नति की भावना को सोचा तब उसी के सामने संस्कारों के प्रपंच बाधा रूप बन आये। विरक्त जीव सदा विजय पाता रहा है किन्तु लोकैषणादि विकारों में भ्रमण शील जीव नियमित जीवन बना कर भी पतित हो जाता है इसलिये ईश्वरीय सत्ता सेवावृत्ति के बिना आधीन नहीं होती है अधिक रूप से जिम्मेवारियां संभालने वाला जीव सत्ता के तत्व को जान सकता है क्योंकि जीव व्यापकता को धारण करने से विशाल बन जाता है जीव में जब पूर्ण निर्माण की कला और रक्षण शक्ति की प्रधानता आ जाती है तो वह ईश्वर के साथ साम्यता रखता हुआ केवल विवेक का विस्तार करता है जिससे संसार का प्रबन्ध शोभित होता

है संसार की प्रत्येक अवस्था यदि शान्ति का कारण वन ती है तो जीव ईश्वरीय भावों वाले अभिनेता माने जाते हैं तब शोक-मोहादि विकार भी उपयोगी गुण बन जाते हैं किसी वस्तु का सम्यक् और अवसर जन्य उपयोग विशेष महत्व को पैदा करता है इसलिए जीव मर्यादा निपुण होकर चित्त वृत्तियों को शांत करता हुआ अपने कर्मठ गुणों द्वार' आकर्षण का केन्द्र बने जिससे विश्वरूपी परिधिकी महिमा में भी आकर्षण आ जायेगा फिर कर्म की अविरल धारा वेदान्त के भावों की प्रतीक्षा करेगी। वेदान्त तत्व तब ही विश्व पर शासन करेगा जब जीव पूर्व कर्म जन्य शक्ति को विस्तृत करता हुआ अपने और दूसरे के लिये उसी सरल और मधुर मार्ग बनाता है जीव वेदान्तके भावोंके साथ विश्वःमें फैलता हुआ संसार के साधनों से अमरता को प्राप्त करता है इसी अमरता के कारण अनित्य वस्तुओं को भी जीव नित्य वना सकता है इस लिये प्रबन्ध प्रिय वेदान्ती ही इस लोक को अमर बना देगा वेदान्ती मनुष्य ही सदाचार के गुणों द्वारा प्रत्येक हृदय में स्नेह का भाव विस्तृत करता है इसी वेदान्त के आश्रय से मनुष्य घृणा से पृथक् हो कर स्नेह का पात्र बनता है जिससे ज्योति का प्रकाश बढ़ जाता है और संसारियों के लिए शुध्द और अभय शील मार्ग बनता है

इसी से हम कल्याण पथ जानकर सबको सुखी बना सकते हैं व्याज भाव से दूर हो कर सत्यता का निदशन बन सकेंगे विश्व भी इन्हीं भावों से शान्ति को प्राप्त होगा।

भवदीयः—

आचार्य स्वामी आनन्द पुरी-दत्ताखाड़ा उज्जैन मध्यभारत—
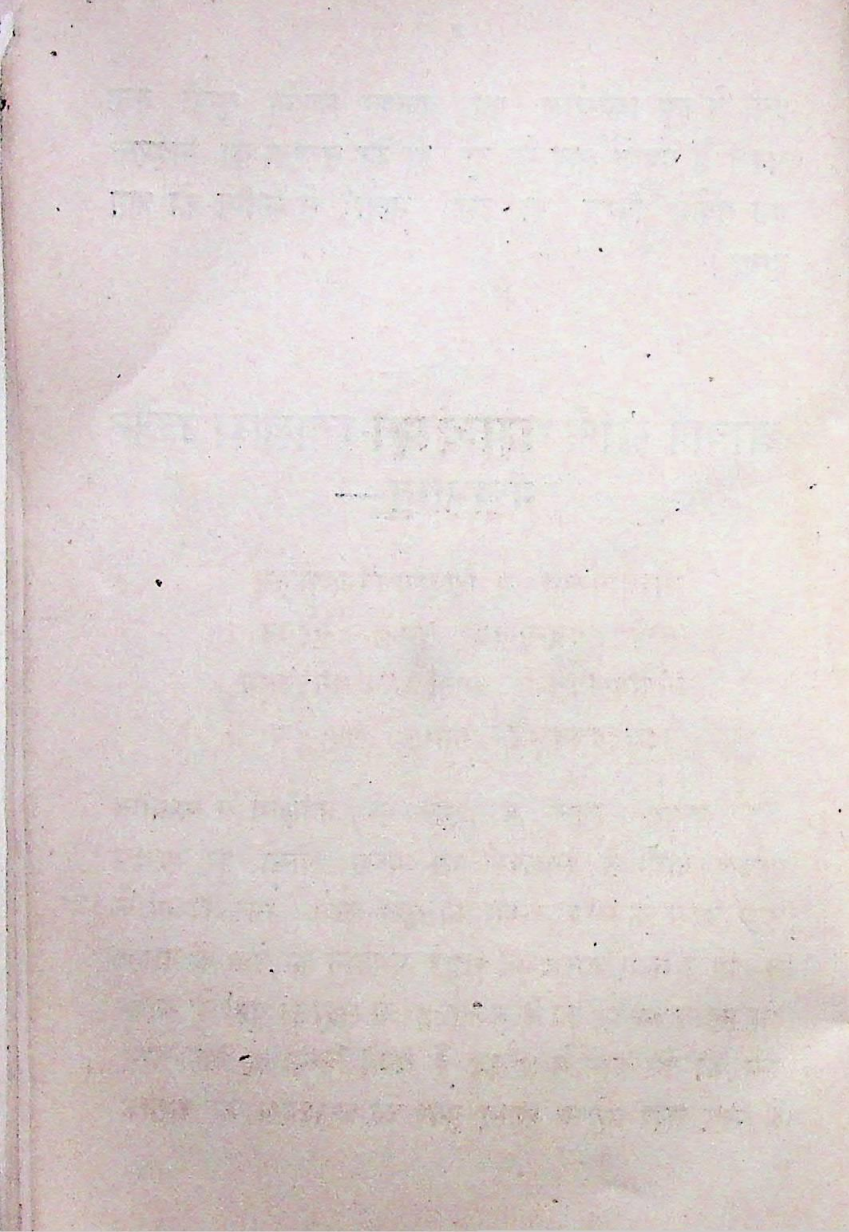
प्रार्थना

शम्भोर्गणेश म शिवस्य विनाशहेतुम् ।
सत्यैः प्रजासुखकरं सुमनो गृहंतम् ॥
स्तौमि प्रियं हि जगतां भुवि सर्गपूज्यम् ।
उद्दण्डदर्पदलने प्राथितः सदा यः ॥ १

भावार्थ संसार में सृष्टि के प्राणियों से माननीय सम्पूर्ण लोगों के आकर्षण रूप-स्वच्छ लोगों का आश्रय सत्य भावों के साथ जनता का सुख करने वाले विघ्नों के विनाश के लिए कारणभूत शङ्कर भगवान् की सेना के नायक उस महान् आत्मा को मैं भजता हूं जो सदा ही दुष्टों के अभिमान को नष्ट करने में प्रसिद्ध हैं अपने विघ्नों को नष्ट करने के लिए सदा मनुष्य महान् पुरुष का अनुकरण करें क्योंकि

मानव तो अनुकरण से अपना उत्थान कर सकता है नम्रता और जिज्ञासा अनुकरण से ही पुरुष में आती है इस लिए तत्वों के प्रति योग्य व्यक्तियों के प्रति यदि हमें जिज्ञासा नहीं होगी तो हम मानव जीवन वाले भी पशुता में मिल जायेंगे इस लिए मानवता की सफलता के लिये हम उस महान् पुरुष का सदा स्मरण करें और उसके बताये मार्ग पर चलें जिसने हमें अपार विभूति का भण्डार दिया है और शान्त भावों के साथ २ हमारी बाधायें हरण की हैं यदि शुद्ध भावनाओं के साथ २ मानवता पनपती गई तो संसार में शान्ति के ही स्रोत प्रवाहित होंगे यह सब जिज्ञासा से हो सकता है ।

चेतो मदीयमगति क्रमचालितानाम् ।
मित्रं सदा गतधियां तु विलास भूमिः ॥
पापात्परो गणपतिः क्व च पापबुद्धिः ।
दोषं पतंगसमधीः खलु यामि तत्वम् ॥ २

भावार्थ मेरा मन तो मर्यादा के साथ व्यवहार करने वाले पुरुषों का आश्रय नहीं है सदा भोग व्यसनों का स्थान बन कर मूर्ख लोगों का सहवासी है अनिष्टभावों से रहित वह गणपति कहां और दूसरों की हित कामना न सोचने वाला मैं कहां, किन्तु पतंग के समान भावों

वाला मैं तत्व को प्राप्त करना चाहता हूं जैसे दीप पर पतंग अपना केवल बलिदान ही करता है ऐसे मैं भी गणपति के लये सर्वस्व दूंगा ही यह कवि की नम्र भावना ही कवि का अनिष्ट दूर करेगी संसार में जो सत्य रहस्य को प्राप्त करना चाहता है उसे दातव्य गुणों का उपार्जन करना उचित है परिश्रम के बिना प्राप्त हुई सम्पत्ति प्रायः दुःखागार होती है सद्गुणों से रहित पुरुष ईश्वरीय धर्म को नहीं जान सकता है इसलिये मनुष्य उपरोक्त नम्र कवि की भावनाओं की नाईं परिश्रम की कल्पना करे। उचित भाव केवल मनुष्य को महान् साथी से नहीं मिलाते हैं अपितु संसारियों के सामने सुविधा वाला मार्ग भी बनाते हैं इसलिये विनय भावपूर्वक हमें अनन्त की खोज करनी है उसी मार्ग में बाधायें न आयें इसलिये महान् साथी को पहिले साथी बनाने के लिये तैयार करना है अन्यथा हमारा परिश्रम और विवेक दूसरों के सामने आदर्श नहीं बन सकेगा।

स्नेहं यदा मतिमतां मयि कत्रिमं स्यात्।
प्राप्तुं तदा सफलता मिह नास्मि योग्यः॥
वात्सल्यजा तु करुणा विदुषां भवेद् वै।
कुर्याम् हि जन्म सफलं सति विघ्नधाम्नि॥ ३

भावार्थ यदि मेरे पर बुद्धिमान पुरुषों का बनावटी प्रेम हो तो मैं इस संसार में सफलता को पाने केलिये समर्थ नहीं हो सकता हूं अर्थात् विद्वानों की कृपा से मैं सफल बन सकूंगा यदि ज्ञानी मनुष्यों की प्रेम वाली दया मेरे पर रही तो अनन्त विघ्नों के होने पर मैं अपने जन्म को सफल कर सकता हूं पूर्वजों की दया के बिना संसार में मनुष्य अपने को सार्थक नहीं कर सकता है क्योंकि विचारों की उच्छृङ्खलता मनुष्य को बाधा में डाल देती है इसलिये स्वच्छ विचारों के लिये ऊंचे सहवास की अपेक्षा करनी चाहिए प्राणी जब तक मानवता और व्यवस्था का प्रदान नहीं कर सकता है तब तक जीवन की सुन्दरता प्राप्त होना कठिन है दातव्य गुणों के साथ भी व्यवस्था आवश्यक है सदा ही बुद्धिमान् आत्मवेत्ता ही ईश्वरीय धर्म का स्रोत रहा है इसलिये मर्यादा को जानने वाले पुरुषों का अन्वेषण आवश्यक है परस्पर प्रेम के साथ २ संसार में सफलता प्राप्त करना कठिन नहीं है सदा आत्म ज्योति वीर भावों के साथ २ मनुष्य सब अनिष्टों का प्रतिकार कर सकता है यदि संमिलित भाव-भावना पूर्वजों की कृपा से मनुष्य में उपस्थित है तो इसी से मनुष्य मानवता का आदर्श बन कर शोभा का पात्र बन सकता है ।

नेहां करोमि भुवनं सुगुणैः प्रयातुम् ।
न स्वर्गसंपदि मनो व्रजते मदीयम् ।
ईहे कृपां नतहृदां परमार्त नृणाम ।
प्राणोऽपि मे तनुधृते तु सुखं विदध्यात । ४

भावार्थ अपने स्वच्छ गुणों के द्वारा संसार के सुन्दर स्थानों को प्राप्त करने के लिये मैं इच्छा नहीं करता हूं मेरा मन स्वर्ग की सम्पत्ति के भण्डारों में नहीं जाता है मैं नम्र हृदय वाले अत्यन्त दुःखी मनुष्यों की केवल आशीर्वाद चाहता हूं अर्थात् दुःखी मनुष्यों की सेवा करने से जो मुझे आशीर्वाद मिलता है मैं उसे चाहता हूं मेरा एक स्वांस भी मनुष्य के लिये सुख को ही करे अर्थात् सदा मेरी कविता मनुष्यों के मन में प्रसन्नता का संचारकरे इस लिये अपने विचारों को प्रकट करता हूं सदा ही मनुष्य मानवता के शासन को पाकर भी अभिनय स्थली में भय करता है क्योंकि योग्य मनुष्य साधारण जनता से अपना सदा सम्पर्क करना चाहते हैं इसलिये इन्हें प्रसन्न करने के लिये वह प्रत्येक चेष्टा करते रहते हैं संसार का रहस्य भी इन्हीं निर्व्यसनी लोगों में भरा पड़ा है इन्हें अपना बना कर ही महान् आत्मा ने महानता प्राप्त की है चाहे वह संसार का कितना बड़े से बड़ा व्यक्ति क्यों न हो दुखियों

की सेवा अवश्य अभ्युदय दिखाती है वह सेवा यदि बाह्या-भ्यन्तर भावों से की हो विशेष कर भ्रान्त जीवों को अपने विचारों से निश्चितपथ में लाने वाला व्यक्ति पूज्य होगा इसलिये कवि की भावना उचित विचारों से संसारके प्राणियों की सेवा करे, यही कामना है। विरला ही सत्य प्रचार को करने वाला ईश्वरीय धर्म का प्रतीक बन कर भी नम्र भावना से लोगों को स्नेह पूर्वक देख सकता है।

वेदान्त तत्वसरसं कथयामि बुद्ध्या।
अन्वेषकै विगतधीः सततं तु मुक्तः॥
ज्ञात्वा विनीतदुरितं च पुनर्गृहीतः।
सत्यं तथाहि करुणां विदधातु सर्वः॥ ५

भावार्थ मैं वेदान्त के सूक्ष्म और मनोहर भाव को अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूं वेदान्त सार के खोज करने वाले विद्वानों ने मुझे मूर्ख जान कर सदा ही छोड़ दिया है किन्तु दुष्टता के भावों से रहित और सत्य का परिश्रमी समझ कर फिर उन विद्वानों ने मुझे ग्रहण कर लिया है अर्थात् उन आत्मवेत्ताओं की मेरे पर कृपा रहती है इस तरह आप सब वेदान्त के जिज्ञासु मेरे पर दया भाव करते रहें क्योंकि आत्मबोध (प्राणियों की) कृपा औरसम्बन्ध

से होता है सदा परिश्रमी निर्व्यसनी और नम्रता का पुजारी वेदान्त तत्व को जान सकता है दूसरों के लिये अपनी प्रत्येक चेष्टा को आदर्श बनाने वाला ही मानवता पर शासन करता है मनुष्यों के लिए सुविधा जनक कार्यों को अप-नाना ही वेदान्त का निदर्शन होगा यह गुण मर्यादा की सेवा करने वाले व्यक्तियों से प्राप्त हो सकते हैं इसलिये सेवा भाव को अपनाने वाला और दूसरों के हित करने के लिये खोज करने वाला वेदान्त का ज्ञाता हो सकेगा। संसार में तपस्वी-विद्वान्-सहिष्णु लोगों की प्रतिष्ठा तब तक नही हुई जब तक उन्होंने दूसरों से आत्मवत् व्यवहार नहीं किया है इसलिये कवि अपने विचारों से सेवा करके भी सबको महान् बनाने की भावना से लोगों की दया का पात्र बना चाहता है। ५
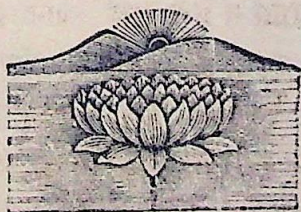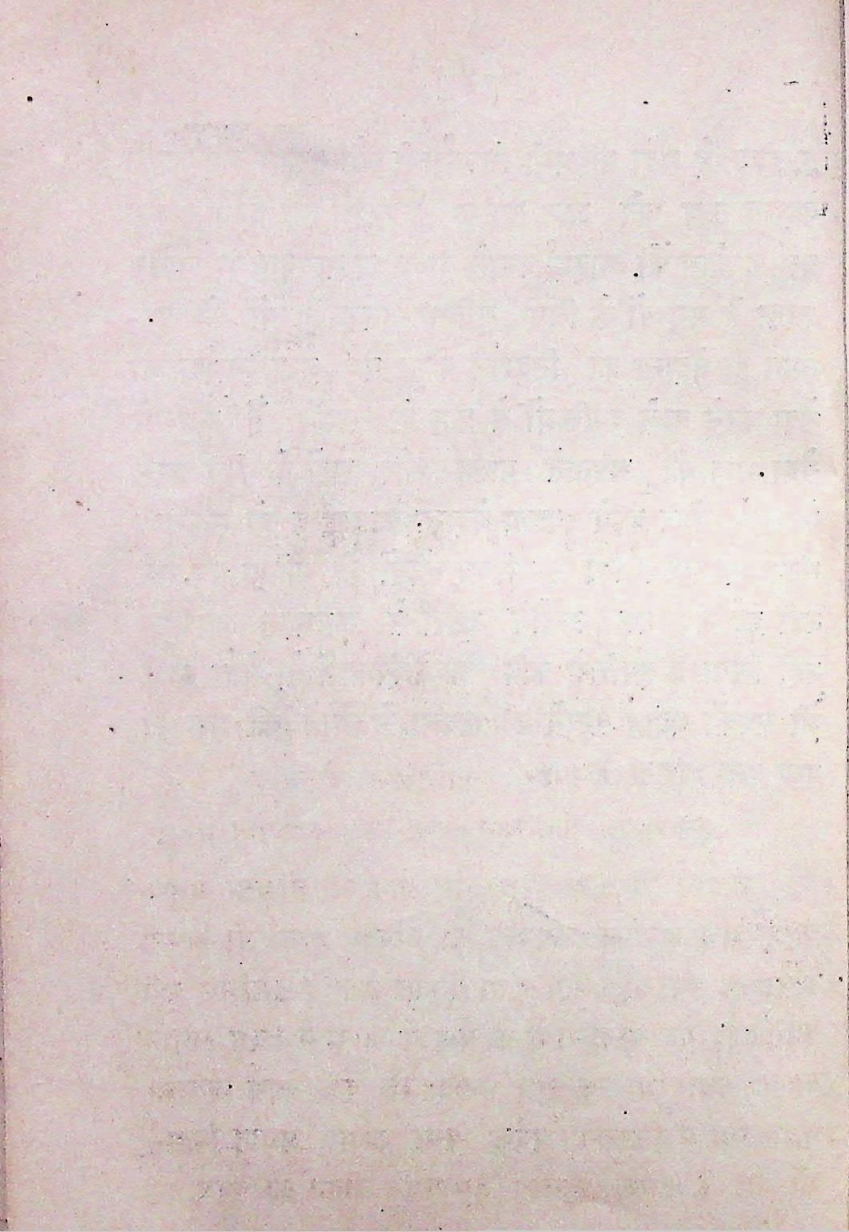
वेदान्त मंजरी

ज्ञानं विभाव सहितं हि विहाय जन्तुः ।
छद्माऽन्वितं शुचि विकर्म श्रयान् विजानन् ॥
स्त्री पुत्रबन्धुरति भावनिमग्न चेताः ॥
व्यत्याज्य यौवनकृतं ननु किं विदध्यात् ॥१॥

भावार्थ योग्य व्यवहार वाले ज्ञान को छोड़कर मनुष्य कपट वाले कर्मों के दुरुपयोग को जानता हुआ भी अपनी इच्छा से उपद्रवी बनता हुआ दिखाई देता है इसलिए स्त्री पुत्र भाई और सम्बन्धियों के मोह के भावों में चित्त लगाने वाला युवावस्था के शुभ व्यवहारों को व्यर्थ बिताकर वृद्धावस्था में निश्चय पूर्वक क्या करेगा अर्थात् विद्वान् भी मोह के कारण स्वर्गीय दाम्पत्य जीवन को व्यर्थ कर

देता है अर्थात् वृद्धावस्था में पवित्र संस्कारों के उपार्जन को नष्ट कर देता है। जो मनुष्य संसार के रहस्य को जान कर यदि उन का उपयोग नहीं करता है तो दूषित संस्कारों वाला मनुष्य अपने जीवन के सम्पूर्ण मार्गों को सदा के लिये दूषित कर देता है। प्रेम का दुरुपयोग मनुष्य को शोक और संघर्ष की ओर ले जाता है इसलिए मनुष्य संसार के कला कौशल को जान कर उसके उपयोग का सदा ध्यान रखे। जितेन्द्रिय और साधु मनुष्यों के निकट रहने वाला पवित्र जीव बन्धुओं के मोह में न पड़ कर सम्पूर्ण पृथ्वी के प्राणियों को अपना समझता हुआ अपने संस्कारों को दृढ़ बनाता है इस तरह का व्यवहार न जान कर मूढ़ मनुष्य प्रकृति के चक्कर में पड़ कर ज्ञान विज्ञान का दुरुपयोग करता है सदा के लिये अपने संस्कारों को भी पशुता में मिला देता है इसलिये विद्वान् मोह और शोक भावों को पवित्रता पूर्वक सोच कर अपने कर्तव्यका पालन करे। १

बाल्यं च मोघवचनं न विचार्य कुर्वन्।
रम्यैर्युवा युवति नृत्यरतो विलासी॥
धत्ते न धर्मसुकृतिं विबुधोऽपि शेषे।
चिन्ता चिता ज्वलितधीर्मनुते न सत्यम्॥ १

भावार्थ—व्यर्थ वचनों वाले बालकपन को न विचार कर संसार के व्यवहारों को करता हुआ और युवावस्था में युवक सौंदर्य भावों के साथ २ विविध विलासों को करने वाला नृत्यादि स्त्रियों के भावों में रहने वाला विद्वान् भी वृद्धावस्था में धर्म के स्वरूप को धारण नहीं कर सकता है अर्थात् विविध रहस्यों को जानने वाला चरित्र हीन, युवावस्था और बालकपन को व्यर्थ नष्ट करके वृद्धावस्था में चिन्ता रूपी चिता से भस्म किया हुआ सत्य भाव को नहीं जान सकता है प्रथम दो अवस्थाओं को यदि मनुष्य संसार के भ्रान्त व्यवहारों में व विलासों में बिताता है तो ईश्वरीय रहस्यों से युक्त भी अपनी वृद्धावस्था को नष्ट कर देता है अर्थात् जो संस्कार आरम्भ में कुत्सित हो जाते हैं वह वृद्धावस्था में पवित्र नहीं बन सकते हैं इस लिए मानवता का स्रोत और चरित्र की धारा से पवित्र हुई भारतीय सभ्यता का यदि प्राणी अनुकरण नहीं करता है, अपने को मर्यादित नहीं बनाता है तो आन्तरिक शान्ति का पात्र नहीं बन सकता है। भारतीय भाव संसारके विलासों से मनुष्य को छुड़ा कर सदा ही शुद्ध संस्कारों ओर ले जाते हैं। जिस से मनुष्य तीनों की अवस्थायें शुद्धता और पवित्रता से संसार के सामने आदर्श रखती हैं, अपने दृढ़ विचार और पवित्र

धारायें मनुष्य बालपन और युवाऽवस्था में बना सकता है यदि इस परम्परा की मर्यादा से मनुष्य शून्य है तो वृद्धाऽवस्था भी ईश्वरीय चिन्तन में न लग कर उच्छृङ्खल वृत्ति को प्रेरणा देती है इसलिए आरम्भ का विचार प्रकट करना चाहिए क्योंकि दृढ़ संस्कार ही जीवन के साथी होते हैं। २

इच्छाप्रवाहपतितः कलहं हि धावन् ।
पारस्परं कलुषितो धरणीपदार्थैः ॥
द्वेषाऽग्नि भस्मविरतो ननु कीटतुल्यः ।
बद्धो हि यापयति जन्म धराविचारैः ॥३॥

भावार्थ—नाना प्रकार की इच्छाओं के प्रवाह में गिरा हुआ कलहादि उपद्रवों को करता हुआ, परस्पर मलिन भावों को धारण करने वाला भूमि के पदार्थों के कारण द्वेष रूपी अग्नि से दग्ध किया हुआ कीड़ों की नाईं पराधीन जीवन को बिताता हुआ और पृथ्वी की व्यर्थ कल्पनाओं में बन्धा हुआ अर्थात् लोकेषणादि दुर्व्यसनों से बन्धा हुआ अपने जन्म को व्यर्थ नष्ट करता है इस लिए जीव अपनी आवश्यकताओं को न्यून करके मृत्यु के पद को जीत सकता है, व्यसनों के प्रपञ्च में गिर कर मनुष्य प्रायः दीन सा बन जाता है इसलिए अनित्य

पदार्थों की लालसा में मनुष्य न पड़ कर यदि नित्य भावों को विचारे तो वह द्वेषाऽग्नि से बचकर अमृत तुल्य स्थान को प्राप्त करेगा मृत्यु पर विजय पाना ही इस संसार में प्राणी मात्र का ध्येय है, भ्रान्त विचारों से स्थूलता को प्राप्त करके मनुष्य सूक्ष्म पदार्थों से नहीं मिल सकता है। इसलिए हम पार्थिव विचारों को छोड़ कर ईश्वरीय और सूक्ष्म भावों की ओर ध्यान दें, यह तब हो सकता है जब मनुष्य अपनी इच्छाओं को दूसरों की इच्छा समझे अपनी विरोधी भूमिकायें उत्पन्न न करके अपने समान ही सब प्राणियों को समझे जब मनुष्य सौंदर्य का निर्माण करता हुआ अपने सार्थक जीवन को व्यतीत करता है तो अन्योऽन्य सम्पर्क बढ़ा कर प्राणी ईश्वर की नाईं पवित्र और सूक्ष्म न जाता है। इसलिए अपने भीतर धीरता-गम्भीरता त्पन्न करके स्थूल जगत् का मनुष्य प्रतिकार करे जिससे नुष्य का जीवन व्यर्थता और दुःखसंघर्ष का पात्र न ने। ३

भूमौ पतङ्गसमतां न विदन्ति नीचाः ।
सख्यं च लोककृतिभिः सततं हि कृत्वा ॥
सत्यं चरन्ति न गुणै रसनादिगोभिः ।
मोहेन मुग्धमनसो भुवि मूढभावाः ॥ ४

भावार्थ—नीच भावों वाले मनुष्य कीड़ों की समता को नहीं जानते हैं अर्थात् अपने चरित्र को पशु तुल्य बनाते हुए भी अपने को नही संभालते हैं, अपने गुणों द्वारा और रसनादि इन्द्रियों द्वारा लोकेष्णादि इच्छाओं के साथ २ मित्रता करके साधारण भावनाओं के साथ २ मोह के कारण नष्ट मन वाले मूर्ख भावों वाले मनुष्य सत्याचरण को नहीं करते हैं, इसलिए केवल सम्बन्धी व्यवहार वाले मनुष्य सदा ही बन्धन में रहते हैं क्योंकि यदि प्राणी अपने दोषों को जान ले तो वह दिव्यता को प्राप्त करेगा। किन्तु संसार की दुर्गम माया ही मनुष्य को अपने आकर्षणों से पतित करके विज्ञान की शक्ति उसे नहीं देती है इसलिए मनुष्य तब तक लोक व्यवहार के साथ प्रेम करता है जब उसे आत्मा का विकास और बुद्धि का प्रकाश साथ देता है, जो मनुष्य वस्तुओं का उपयोग करने के कारण मोह और शोक को अपने जीवन से निकाल कर महात्मापन के भावों को धारण करता है तो वह सरल और मधुर बन कर सब के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जाता है तब मनुष्य की सब इन्द्रियां कला और सौंदर्य को उत्पन्न करती हैं तब ही प्राणी ईश्वरांश को प्रकट करता है जब ईश्वर तुल्य कर्मठ बन कर उसे कर्मों का विन्यास आता हो तब मनुष्य नीचता और क्षुद्र भावों

से बच कर ऊंचे शिखर पर चढ़ता है इसलिए संसार के व्यवहार जब तक ईश्वरीय भाव वाले नहीं बनते हैं तब तक मनुष्य भ्रान्ति को नहीं हटा सकता है इसलिए हमारा आवश्यक कर्तव्य हो जाता है कि हम अपने दोषों को जानें फिर हम अन्वेषण कर सकेंगे । ४

स्नेही स्वयं स्वतपसा मधुरैर्वचोभिः ।
द्रष्टाऽत्मनो श्च न विदन् स्तवनं कुमार्गी ॥
देवं स्तुवन् शिवमनाः सुतरां विभेदैः ।
आप्नोति तत्त्वसरितं न बुधोऽपि लोके । ५

भावार्थ—अपने तप से और मधुर वाणी से कल्याण भावों को करने वाला प्रेमी जीव भी विविध भेदों के साथ देवता की स्तुति करता हुआ अनेक भ्रान्तियों के कारण अपनी और देवता की स्तुति को न जानता हुआ और कुत्सित मार्गों का अवलम्बन करने वाला विद्वान् जीव भी तत्त्व रूपी नदी को नहीं प्राप्त कर सकता है, क्योंकि संसार की मित्रता जीवों को प्रायः भ्रान्त बनाती है यदि जीव उस मित्रता में सत्य तत्त्व को और शुद्धाचरण को देखे, तो यही संसार की मित्रता व्यवस्थामय हो जाती है इसलिए मनुष्य कर्मयोगी बनकर सौंदर्य का उत्पादक तब बन

सकता है। जब अपने भाव विश्व के विभागों में प्रसारित करे। मनुष्य तब तक अपने महत्व को नहीं जान सकता है, जब तक उसके हृदय में घृणा और प्रतिकार की भावना उपस्थित है, भेद रूप से सत्याचरण करता हुआ जीव यदि मर्यादा का पालन करता है तो उसके जीवन में अपने सुख के बलिदान की भावना उत्पन्न होगी। दूसरों पर मित्र की दृष्टि रखने वाला मनुष्य कभी भी विपत्ति और शोक को प्राप्त नहीं करेगा यही सुमार्ग और मानवता का स्रोत है। ५

भोग्ये रुचा पशुरिवाचरणं दधानः।
प्रेयश्च शास्त्रकथितं न गृणान् महात्मा॥
श्रेयोऽपि सौख्यनिलयं नच भूमिजन्तुः।
याति भ्रमं विगतधीः प्रियजन्ममृत्युः॥ ६।

भावार्थ—जीव रुचि के साथ भोग्य पदार्थों में पशु की नाईं आचरण करता हुआ शास्त्रों से प्रतिपादित सुख के स्थान रूप प्रेय और श्रेय को नहीं प्राप्त करता है पृथ्वी का प्राणी विशाल आत्मा को धारण करता हुआ जन्म और मृत्यु से प्रेम करने वाला अर्थात् आवागमन के भ्रम जाल में पड़ा हुआ मोह-शोक के कारण बुद्धि रहित होकर

भ्रांत भावों को प्राप्त करता है। जीव अपने बन्धन को न सोचकर दुःख सागर में स्वयं ही पड़ता है क्योंकि केवल भोगों की भावना को रखने वाले प्राणी पशुता को प्राप्त करके ज्ञान और विज्ञान से शून्य हो जाते हैं। संसार में इन आसुरी संपदा वाले जीवों के उद्धार के लिए प्रेय और श्रेय दो मार्गों को हमारे ऋषियों ने बनाया है किन्तु कलुषित संस्कारों के कारण इन मार्गों का आश्रय न करके प्राणी आवागमनके कृत्रिम सौंदर्य को स्वीकार करता है। इसलिए अपनी भ्रान्त बुद्धि पवित्र और निश्चित बनाने के लिए सदैव ईश्वरीय आचरण को करना हमारे लिए कल्याणप्रद होगा। क्योंकि पवित्र आचरणों से मनुष्य की बुद्धि सन्देह रहित होती है आत्म विश्वासी लोक-परलोक दोनों मार्गों से लाभ उठाता है संसार का प्रत्येक पदार्थ यदि आत्म बोध कराता है तो संसार ही हमारा हितैषी बन जाएगा। ६

यावन् न वेत्ति विमलां सुगतिं सुप्रज्ञः।
ब्रह्माश्रितां जगति याति रतिं न तावत् ॥
अद्धै ततत्त्वरहितो भ्रमति प्रभावी।
मुक्ति र्न तस्य पततो विषयै र्हि जन्तोः ॥ ७

भावार्थ—जब तक विद्वान् पवित्र आत्मगति को नहीं जानता है तब तक ब्रह्म के सम्पर्क में रहने वाली प्रेम की अवस्था को जगत में नहीं प्राप्त कर सकता है, त्याग-तपस्यादि शुभाचरणों के कारण प्रभाव वाला होकर भी अद्वैत तत्त्व के बिना जीव व्यर्थ घूमता है, विविध विलासों के कारण नष्ट हुए २ उस अध्यात्म शून्य जीव की मुक्ति नहीं होती है, क्योंकि निर्व्यसनी निर्द्वन्दता को प्राप्त करने वाला जीव ही मुक्त माना जाता है, संसार में जीव यदि ब्रह्म से सम्पर्क रखने वाली मर्यादा को नहीं अपनाता है तो शास्त्रों की बुद्धि के द्वारा और पूर्वजों से बताये हुए मार्ग के साथ २ चल कर भी सफलता को नहीं प्राप्त करता है, क्योंकि सफलताकी सीढ़ी आत्म संशोधन है। साक्षर मनुष्यों से वह निरक्षर व्यक्ति शिक्षित माने जाते हैं और मान के पात्र होते हैं जो चरित्र के सूत्र में संबन्धित हैं। साधारण मनुष्यों के लिए आदर्श रखने वाला ही नित्य मुक्त माना जाता है, जिसकी कीर्ति स्थाई है वह नित्य शुद्ध-बुद्ध और मुक्त है इसलिए जीव व्यसनों के साथ चल कर विद्वत्ता और सहवास की सफलता को प्राप्त नहीं करता है, अध्यात्म-शोध ही मानवता की सफलता है।

द्वन्द्वाऽन्विता च सुमतिः कुरुते न सौख्यम् ।
मायां भवस्य प्रकृते र्मनुते च जेता ॥
निर्द्वन्द्वभावसुरुचिर्विरलो मनुष्यः ।
भेदैर्यदा भजति ब्रह्म सुखं न धत्ते ॥ ८

भावार्थ--द्वन्द भाव वाली बुद्धि सुख को प्राप्त नहीं करती है संसार के विकारों को जीतने वाला ही जगत को प्रकृति की लीला ही मानता है, निर्द्वन्द भावों में रुचि रखने वाला विरला मनुष्य भी साम्प्रदायिक भेदों के साथ २ जब ब्रह्म का स्मरण करता है, तब सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए भेद रहित ही ब्रह्म की उपासना करनी उचित है, जब जीव आत्मविश्वास की शृंखला से पृथक् हो जाता है तो उसे नाना प्रकार के पदार्थ विविध भ्रान्तियों को उत्पन्न करने वाले दिखाई देते हैं आत्मविश्वास को सदा करने वाला प्रत्येक परमाणु में अपने भाव को प्रत्यक्ष करता है इसलिए जीव को विद्या-तपस्या और पूर्वजों के अनुकरण के साथ २ अपने में विश्वास करना होगा जिससे संसार की अगम्य माया विविध सन्देहों को पैदा करके जीव को पतित न कर सके। जीव सदा ही द्वन्द भावना से रहित होकर सफलता की भूमि को तब ही प्राप्त करता है जब उसके हृदय में नई २ आशाओं का संचार और

उपयोग भरा हुआ हो। जब जीव एक संकीर्ण भावों के अन्दर अपने को मान बैठता है तब उसका सम्बन्ध विशाल भावनाओं से पृथक् हो जाता है, इसलिए विस्तृत ईश्वरीय ज्योति के दूर होने से जीव विविध तिमिरान्ध किरणों का सामना करता है, विविध बाधाओंके कारण और अनात्म-विश्वास होने से जीव अपने को भूल जाता है। जिससे जीव की सारी उपार्जित क्रिया व्यर्थ सी हो जाती है, इसलिए हमें घृणा के भावों से बचना होगा। ८

बाहुल्यभावनिरतो जगते तपस्वी।
शुद्धे परे भुवि यशश्च कलां न बिभ्रत्॥
मृत्युं प्रयाति विमना न सुखं विमूढः।
अध्यात्मतत्त्वगमनः सुधिया प्रतीच्यः॥ ९

भावार्थ--संसार के उपकार के लिए तपस्वी भावों वाला विविध भावों से युक्त होकर शुद्ध परब्रह्म में और संसार में कीर्ति चिन्हों को और तत्त्व निर्माण को न प्राप्त करता हुआ, सफल पुरुष न बनने से उदास वृत्ति वाला मृत्यु रूप कुफल को प्राप्त करता है सुखको प्राप्त नहीं करता है, क्योंकि अध्यात्म रहस्य को जानने वाला ही बुद्धि के साथ २ पूज्य माना जाता है, अर्थात् संसार के उपकार में

रह कर भी आत्मनिष्ठ न होने से विविध मार्गों का अवलम्बन करने वाला शुद्ध स्वरूप परब्रह्म को नहीं जान सकता है, और संसार में कीर्ति स्तम्भ को स्थाई नहीं कर सकता है, क्योंकि द्वन्द भाव सदा ही संघर्ष को पैदा करते हैं ईश्वरीय रहस्य को जानने वाला जिज्ञासु बन कर एकता का पाठ पढ़ता है और पढ़ाता है, मधुरता और प्रेम का व्यवहार मनुष्य को कर्म बन्धनों से पृथक् करके मुमुक्षु बना देता है, जिससे जीव सुविधा पूर्वक उस कैवल्य धाम की उपासना करता है और ईश्वर तुल्य माननीय बन जाता है फिर द्वन्द भावों से रहित जीव अद्वैत भाव में विश्वास करने लगता है, फिर ईश्वर और जीव की साम्यता और प्रकृति का उपयोग केवल कल्याण के सिवा अन्य जीवों को भी दिखाई नहीं देता है अर्थात् केवल आनन्द ही दिखाई देता है, इस भेद भावों की मर्यादा पर चल कर जीव घृणा के भावों को छोड़ दे। अन्यथा जीव घृणा का पात्र बन कर सदा के लिए भ्रान्त बन जाएगा।

स्वार्थाय कर्म नियतं दधति स्तुतिं ताम्।
द्रव्याऽर्जनं मतिमतामिव सत्यवाक्यैः॥
सर्वं सुखैकगमनं हि भवेन् मनुष्ये।
मोघा बिना च सुकृतेः सुधियोऽपि प्राप्तिः। १०

भावार्थ–जो मनुष्य अपने कर्तव्य कार्य को स्वार्थ के लिए भी करता है वह बुद्धिमानों के सत्य वाक्यों द्वारा उपार्जित द्रव्य की नाईं स्तुति को प्राप्त करता है अर्थात् बुद्धिमानों की द्रव्य प्राप्ति की नाईं सारे सुखमय भाव यदि मनुष्य में हों तो भी आत्म सुख के बिना स्वच्छ बुद्धि की प्राप्ति भी व्यर्थ है इसलिए जीव को आत्मशुद्धि के लिए परिश्रम करना चाहिए। जीव संसार में अपने कर्तव्यों को पालन करने से प्रशंसा का पात्र तो बन जाता है किन्तु आत्मा के विचारों की बहुलता के कारण प्रायः जीव संतोषको नहीं प्राप्त करता है,इसलिए बुद्धि बलसे यदि संसार के सुख हम प्राप्त भी करते है, तो भी विचारोंकी एकता के अभावके कारण शान्ति नहीं मिलती है इसलिए जीव सदा ही आत्म संतुष्टि को प्राप्त करने के साधनों को प्राप्त करे और आत्म संतुष्टि परोपकार के भावों में देखें यदि बुद्धि प्राबल्य चरित्र के बिना कर्म कुशलता दिखायेगा तो संसार के प्राणियों का हित नहीं होगा, क्योंकि व्यर्थ कल्पनायें मनुष्य को भ्रान्त बना देती हैं। आत्म सहयोग से किया गया कार्य पूर्ण रूप से सफलता को प्राप्त करता है क्योंकि जनता के हित में आत्म सम्पर्क की भावना होती है इस लिए आत्मा को नाईं व्यापक बुद्धि का स्वार्थ ही परार्थ

होगा फिर कर्तव्य रूप से प्राणियों का आदर्श बन सकता है उसी व्यवस्था से संसार में शान्ति होगी।

ब्रह्मत्ववाक्यनिपुणः कथयेत् सुवाचः।
विद्वान् प्रसन्नकरणे जगतां प्रसिद्धः।
भावान् निजात्मसुखे रहितो मनस्वी।
गर्तं प्रयाति पुनरागमनैः स लोके। ११।

भावार्थ—संसार के प्राणियों को सुखी करने में प्रसिद्धि को प्राप्त करता हुआ ब्रह्म और आत्म बोध को समझने के लिए चतुर बुध्दि वाला विद्वान भी यदि मधुर वाक्यों को कहे व पवित्र भावों को समझाये। तो भी अपनी आत्मा की गति के भावों से दूर होकर अनुभव शील जीव संसार में विविध प्रकार के भ्रमणों के कारण विपत्ति को प्राप्त करता है अर्थात् आवागमन के साथ २ अनेक दुःखों को जीव देखता है जो वैदकीय-शास्त्रीय गम्भीरताकी मर्यादा को सम्यक् जानता हुआ मनन नहीं करता है अपने जीवन में उसे सम्बन्धित नहीं करता है और दूसरों के लिए सरल और पूर्ण मार्ग बताकर भी स्वयं उसी मार्ग पर नहीं चलता है वह जीव आवागमन के चक्र से मुक्त नहीं हो सकता है जब जीव के संकीर्ण विचार-सुविचार और विशालता के सागर में तरङ्गों पर नाचते हैं तब संसार के

प्राणी उसी विशालात्मा को अपना केन्द्र समझ कर संसार में शान्ति के उत्पादक बनते हैं जीव आत्म सन्तोष के बिना अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाता हुआ व्यसनों का केन्द्र बन जाता है इस लिये संसार की माया जीव को जड़ समझ कर और ईश्वरीय सत्ता से दूर करके मोह-शोक के जाल में फंसा देती है, इस लिये जीव जिन भावों को धारण करे उन्हें सम्पूर्ण विश्व में विस्तृत करदे, क्योंकि बहुत सहयोग मिलने से सुविधा होगी और परोपकार चैतन्य दशा में किया गया मुक्ति का साधन होता है इस लिये आत्म शोध हमारा कर्तव्य है । ११

अज्ञानिजीवसहितोऽपि यशः सुगन्ता ।
माधुर्यवृत्तिवचसा प्रसभंहि वक्ता ॥
चारित्र्यशून्यविगतो व्रजति भ्रमं यः ।
तस्मै क्व मुक्तिरमृता क्व सुखं विविक्तम् । १२

भावार्थ– सरल स्वभाव और मधुर वाणी से हठ पूर्वक स्वयं उपदेश देनेवाला अर्थात् दूसरों के हित समझाने वाला, विविध कीर्ति को प्राप्त करने वाला, किन्तु संस्कार वशात् मूर्ख मनुष्यों के सहवास में रहने वाला, अपने सदाचरण के नष्ट करनेसे उदासीनता को प्राप्त करने वाला जो जीव भ्रान्ति को

प्राप्त करता है, उस के लिये अमृतमय मुक्ति और नितान्त सुख कहां से हो सकता है अर्थात् जो प्राणी बाह्य जीवन और आन्तरिक जीवन में कृत्रिमता को प्रधानता देता है, वह जीव सत्य रहस्य से शून्य हो जाता है सदा ही बन्धन उस जीव के लिये होते हैं जिसने अपने स्वभाविक भाव गुप्त रखे हैं संस्कारों को बहुलता और उन का विविध मार्गों में विचरण जीव को संदिग्ध बना देता है, इस लिये प्राणी अपने नियत ध्येय को अपने रोम २ से अपने आचरणों द्वारा प्रकट करे और किसी को भी हठ पूर्वक कृत्रिम ध्येय को न समझाये। और शुद्धाचरण करने वाले मनुष्यों का सहवास करके स्थाई यश का पात्र बने। कृत्रिम अभिनय मनुष्य को नाटकीय वृति वाला बना देता है इसलिये जीव मर्यादा की सीमा में रह कर आन्तरिक विशालता और अद्वैत भावना को प्राप्त करे। जिससे जीव भ्रान्ति से दूर होकर मुक्ति का पात्र बनेगा। सदा यदि जीव अपनी चेष्टाओं पर ध्यान देगा तो जीव को अपने में विश्वास हो जाता है, इसी तरह आत्मनिष्ठ व्यक्ति सब ओर विश्वास पैदा करता हुआ अपनी समस्याओं को स्वयं समाप्त कर देता है, किन्तु केवल इन्द्रियों से कार्य करने वाला आत्म स्रोत से पृथक् हो जाता है उस के लिये तो संसार ही बन्धन हो जाता है

इस लिये आत्म विश्वास मुक्ति का मूल कारण है वह मूल कारण स्वभाविक व्यवहार पर निर्भर है १२ ।

मिथ्याऽभिमानविधयो विदुषाञ्च मान्याः ।
व्याजाऽन्विता जनकृतौ कलुषाः सुकृत्ये ॥
कर्मप्रधानविषयाः खलु रज्जवस्ताः ।
विद्यां विना जगति बन्धन हेतवो हा ॥ १३

भावार्थ—किसी गुप्त भेद के कारण बड़े २ विद्वानों से आदरणीय किन्तु कपट के व्यवहार वाले असत्य अभिमान के नियम पवित्र कार्यों में और मनुष्यों के व्यवहारों में पापरूप होते हैं। कर्मों की प्रधानता के आश्रय वाले जीव ब्रह्म सम्बन्धी विद्या के विना संसार में बन्धन के कारण और रज्जु रूप बनते हैं इस लिये अनधिकार चेष्टा के साथ २ त्यागियों के तपस्वियों के धर्मात्माओं के नियम हितकर नहीं हो सकते हैं क्योंकि वह कर्म बन्धन का कारण होते हैं क्योंकि उन्हींकी भावना कर्मों तक सीमित रहती है इस लिये आत्म विद्या के विना जीव यदि कुछ विस्तृत आयोजन करता भी है तो उसकी उपार्जन लीला व्यर्थ सी हो जाती है, क्योंकि जनता के आदर्श भावों से शून्य विद्वानों के प्रपंच और परिश्रमियों की कठोर क्रियायें व्यर्थ हो जाती हैं आत्मबोध तो मधुर और सरल व्यवहारों की

अपेक्षा करता है इस लिये जीवन का रहस्य नम्रता और रक्षण के भावों में निहित है क्योंकि विस्तृत जगत में जीव आत्मविस्तार के विना प्रपंच में बन्ध जाता है क्षेम के भाव जीव आत्मबोध से सीख सकता है आत्मनिष्ठ जीव कृत्रिमतादि दोषों से दूर रहता है लाभ-हानि-सुख-दुःख के भावों को विचारता हुआ जीव केवल आत्म बोध के अवसर की प्रतीक्षा करता है फिर उस जीव की प्रत्येक क्रियायें बन्धन का हेतु न बन कर सुख का साधन बनती हैं और सब के लिये निदर्शन रूप होती हैं। १३

कर्मण्यजीवनयुतो लसितः सुपात्रैः ।
वैराग्यकृत्यनिरतो जगते चरित्रैः ॥
विद्याविनीतदुरितः पुरुषो मुमुक्षुः ।
बुद्धया प्रफुल्लमनसा व्रजति प्रभां सः ॥१४

भावार्थ—संसार के लिये विरक्तिके कार्यों में लगा हुआ उद्योगी मनुष्य स्वच्छ जीवन के साथ २ योग्य मनुष्यों के द्वारा शोभित होकर विद्या के प्रभाव से पापों को नष्ट करने वाला मोक्ष की इच्छा करने वाला बुद्धि बल से और प्रसन्न मानसिक भाव से प्रकाश के रहस्य को प्राप्त करता है

अर्थात् योग्य कर्तव्यों के कारण जीव मोक्ष की इच्छा करता हुआ कर्मबन्धनों से पृथक् हो जाता है संसार के पदार्थ उस जीव के लिए सौंदर्य का स्रोत बनते हैं जिसने अपने चरित्र निर्माण से संसार के सामने आकर्षण केन्द्र बनाया है मानसिक शुध्दता बुध्दि की सूक्ष्मता हमारे जन्मान्तरों के आवरणों को दूर कर सकती हैं पाप और पुण्य के आवर्ण दूर होने से मुक्त पुरुष प्रत्यक्ष अवतारी बन जाता है इसलिए आत्मबोधही विद्याका केन्द्र माना जाता है जीव यदि उसके केन्द्र में विचरण करता है तो उसे ईश्वरीय और अद्वैत तत्त्व दिखाई देते हैं आत्मनिष्ठा के साथ २ कर्मठ मनुष्य जीव भाव से पृथक् होकर ईश्वरांश गिना जाता है क्योंकि शुद्धता और परार्थ की सेवा मनुष्य को अबाधित रूप से चलाती है जब अपनी असीम शक्तियों को जीव जानता है तो सच्चा प्रबन्धक बन कर शान्ति का प्रसार करता है तब जीव तिमिरान्ध से निकल कर प्रकाश स्वरूप बनता है फिर जीव के संकल्प प्राकृत नियम बनते हैं इसी से ईश्वर और जीव को साम्यता हो जाती है। १४

आत्मस्वरूपकृतिरेव भवाब्धि मुक्तिः।
भव्येषु वस्तुषु विकर्मगति श्च दुःखम्॥

तस्मादहंकृतिममुं हि विहाय भव्यः।
अध्यात्मचिन्तनरति निवसेन् मनुष्यः ॥ १५ ॥

भावार्थ—आत्मस्वरूप का व्यवहार ही संसार में मोक्ष का रूप है सुन्दर वस्तुओं में दुरुपयोग की भावना ही दुःख है। इसलिए सत्सङ्ग को अपनाने वाला आत्मबोध में प्रेम करने वाला अहंकार के भावों को छोड़ कर शान्त बन कर जगत् में जीव निवास करे। अर्थात् अहंकार करने वाला प्राणी आत्म चिन्तन से पृथक् रहता है इसलिए जीव वस्तुओं के उपयोग को करता हुआ संसार के जीवों को अपने जीवन तुल्य बनाता हुआ मोक्ष के मार्ग का यात्री बनता है आत्मा का चिंतन और उसे स्वभाव में परिणत करना शुद्ध व्यवहार का पाठ है इसी पाठ का मनन और अध्ययन करके जीव ईश्वरीय भावों को प्रत्यक्ष करता है जब जीव विशाल ज्योति से सम्पर्क रखता है तब जीव के लिये सुख-दुःख-संघर्ष-शोक-मोह-विपत्ति यह शिक्षक बन जाते हैं तब जीव सुविधा पूर्वक सब ओर विचरण करता हुआ और अद्वैत भावों के साथ शिक्षा का पात्र बनकर मुक्त माना जाता है प्रत्येक वस्तु अवसर को पाकर अमूल्य बन जाती है यदि उसी वस्तु को चैतन्यमयी शक्ति उपयोग करती है तो वह जीव की

मुक्ति का साधन बनती है इसलिए जीव अपनी शक्तियों को यदि देखता है तो जीव मानवता को प्रकट करके प्रकृति-विकृति दोनों पर आधिपत्य करता है संसार में चेतनता के विकास से पूज्य बन जाता है। १५।

लोके विकर्म भवति क्षयकारणं तत्।
वध्नाति मुग्धमनुजं -विरतेन्द्रियं तम्॥
द्रष्टा निजात्मनि भवस्य जयेद्विभावैः।
तस्माद् यतात्मपुरुषं मनसा च पश्येत्॥ १६

भावार्थ—संसार में कर्मों का, परिश्रम का दुरुपयोग क्षय का कारण होता है व्यसनों से क्षीण इन्द्रियों वाले कृत्रिम कर्मों से मोहित मनुष्य को कर्मों का दुरुपयोग ही बन्धन में डाल देता है अपनी आत्मा में संसार के तत्वों को देखने वाला अपने कर्तव्यों से विजय को प्राप्त हो इसलिए आत्मदर्शन करने वाले नियमित पुरुष को मानसिक भावों से देखो। क्योंकि शान्ति आत्मदर्शन में निवास करती है जीव यदि व्यसनों से अपने को मुक्त करके अपनी इन्द्रियों और मन को श्रेष्ठ मनुष्यों के अनुकरण में लगाता है तो वह सदाचारी बन कर संसार को मुक्ति का संदेश देता है जिन जीवों ने सत्यता का दुरुपयोग और

व्यसनों की बहुलता को अपनाया है वह आवागमन के चक्र में घूमते हैं इसलिए जीव सारे संसार को अपना निवास समझता हुआ इसे सुन्दर बनाने का यत्न करे और सदा ही उच्चाऽभिलाषा के साथ प्रत्येक कर्म को करता हुआ आत्मानन्द के लिये प्रत्येक समय प्रत्येक वस्तुका उपयोग करे जब तक जीव पूर्णता को प्राप्त नहीं करता है तब तक जीव शुद्ध मर्यादा का अवलम्बन करता रहे क्योंकि प्रकृति के विकार पुष्ट इन्द्रिय वाले पुरूष को नहीं दुःख देते हैं विषयी, और क्षीण, विकारों का केन्द्र बन जाता है इस लिये साधु सहवास ही जीव के उत्थान का का साधन होगा । १६ ।

जीवो यदा प्रकुरुते स्वममत्व भावम् ।
क्षिप्रं तदैव पतति व्ययदोष चेताः ॥
स्वीयं ममत्वविपदं च विसृज्य जन्तुः ।
प्राप्नोति मोक्षमजरं भुवि केवलः सः ॥ १७

भावार्थ—जब जीव मोह के वातावर्ण को व अपने मन के भाव को अपनाता है तब कर्तव्यों के दुरुपयोग में मन को लगाता हुआ शीघ्र ही पतित्त हो जाता है अपने अभिमान रूप दुःख को छोड़कर जीव अक्षय मोक्ष को

प्राप्त करता है फिर वही जीव अद्वैत भाव में रहकर ब्रह्म मय हो जाता है इसलिये ममत्व भाव से दूर होना ही मोक्ष का साधन है जीव अक्षय भावनाओं वाला बन कर संसार के पदार्थों का निरीक्षण कर सकता है यदि स्वल्प विचार और स्वार्थ की भावनायें प्रकृति जन्य विकार जीव में न आयें तो जीव व्यापक और शुद्ध ब्रह्ममय है क्योंकि यही कारण अद्वैत रहस्यों का परिणाम है जब प्रबुद्ध जीव एकता के साथ २ संसार पर आधिपत्य करता है तो साधारण जीवों को वही जीव महान् और ब्रह्म प्रतीत होता है भावना की शुद्धि ही केवल जीव को ब्रह्म से मिला सकती है नम्रता और सरल गुणों के साथ जीवों का हितैषी जीव मुक्त बन कर सब ओर शान्ति का प्रसार करता है ममता और ममत्व में जड़ जीव ही पशु की नाईं विचरण करता है जीव मानवता की सीमा तक तब जा सकता है जब जीव सच्चरित्र की धारा में शीतल रहता है वही जीव ब्रह्म बन कर अद्वैत भाव को व्यवहारों से दिखाता है। १७

द्रव्ये ममत्वकुमते र्भवतीह जीवः।
द्रव्याणि मे ऽपि जगते न ममेदमीशे ॥
सर्वं लयं सुखतया खलु याति किञ्चित्।
सन्धार्य चेतसि जनो भुवि केवलः सः ॥ १८

भावार्थ—संसार के पदार्थों में ममत्व की कुबुद्धि के कारण जीव माना जाता है मेरे उद्योग से उपार्जित पदार्थ संसार के लिए हैं मेरा कुछ नहीं है यह जो कुछ दिखाई देता है उस ब्रह्म में यह सारा स्थूल जगत् लय को प्राप्त होता है ऐसा चित्त में सोच कर जो मनुष्य दिखाई देता है वही संसार में ब्रह्म माना जाता है क्योंकि विराट् की भावनायें विशाल होती हैं यदि जीव अपनी भावनाओं को और उपार्जित अपने संस्कारों को उस विराट् में मिला देता है तो जीव ही सब परिणामों का आधार माना जाता है सेवक ही स्वामी बन जाता है यदि सेवकाई स्वामी के कर्तव्यों की नाईं हो इस लिए जीव विराट् जगत् का कल्याण सोच कर और सौंदर्य का निर्माण कर के विराट् बन जाता है अपने सब भावों को अद्वैत तत्व में मिलाने वाला मुक्त माना जाता है वह जीव संसार में सर्वत्र अखंड स्वामित्व को प्राप्त करता है जो प्रत्येक व्यवहार को भृत्य की नाईं न करके प्रत्येक व्यवहारों का स्वामी बनता है व्यवहार की सफलता को करता है वह संसार में जीव ब्रह्म का निदर्शन होगा वह संसार को अपना और अपने को संसार का बना कर आनन्द और शान्ति का स्रोत बनता है स्थूलता का वह ध्यान न करता हुआ

सूक्ष्म भावों को सदा विचारता हुआ वह सदा प्रज्ञ बुद्धि होता है ॥ १८

चित्तं च तत्कृतिगता विविधाः पदार्थाः ।
भेदं द्वयं हि विदधन् न प्रयाति तत्त्वम् ॥
भेदो हि बन्धनगति र्भुवनस्य मुक्तः ।
बन्धाद् विदग्धपुरुषः खलु पूज्यते सः ॥ १६

भावाथ—चित्त और उससे बनाये अनेक पदार्थ-ऐसे द्वैत भेद को करता हुआ जीव तत्त्व को नहीं प्राप्त कर सकता है भेद ही बन्धन का आश्रय है उस भेद रूपी बन्धन से मुक्त पुरुष पूजा का पात्र बनता है इसलिए अद्वैत भावना ही मोक्ष का मार्ग है संसार का एक सूक्ष्म कण भी जीव से अनन्य सम्बन्ध रखता है और जीव भी सूक्ष्म पदार्थों में ही अपना निवास समझता है इसलिए जीव विराट् है संसार के व्यवहार साधनों के अभाव से सफलता को नहीं प्राप्त करते हैं इसलिए साधन भी व्यवहार ही है इसी तरह जीव यदि ईश्वरीय भावों का साधन बनता है तो जीव भी ईश्वर ही है शरीर के बिना जैसे आत्मा के कार्य प्रगट नहीं होते हैं वैसे ही ईश्वरीय कृतियां पवित्र जीव के बिना कैसे प्रयत्न होंगी इसलिए जीव और ब्रह्म

की साम्यता होगी ईश्वर से भिन्नता को अपनाने वाला जीव प्रकृति चक्र में फंस जाता है इसलिए भेद संसार में जीव को घृणा और कलुषित वातावर्ण का आवर्ण बना कर जीवको अप्रत्यक्ष और अज्ञानी बना देता है विश्वकी कल्पना अपने स्वभाव में करने वाला जीव ब्रह्म ही होता है सब ही कल्पना मन की बनाई हुई हैं किन्तु कर्मठ जीव व्यर्थ भेदों में न पड़ कर उपयोगी को ग्रहण कर व्यर्थता को दूर कर देता है। १६।

आस्थैव नाम जगति भ्रमकारिणी सा।
तस्माद् भवे प्रकृति भव्य विधावनास्थाम्॥
कृत्वा सुखं विचपलोऽपि गुणै र्हि शेते।
कैवल्यप्रीतिपुरुषो न करोति मोहम्॥ २०

भावार्थ—जगत् में भ्रान्तियों को करने वाली यही श्रद्धा है जो असत्य पदार्थों में प्रतीत होती है इसलिए प्रकृति के कृत्रिम और सुन्दर भावों में अविश्वास करके चंचल मनुष्य भी अपने गुणों के द्वारा सुख पूर्वक सोता है मोक्ष से प्रेम करने वाला संसार के असत्य पदार्थों में मोह को नहीं करता है क्योंकि सत्य का पुजारी सत्य से प्रेम करता है संसार में जीव अपने ध्येय को प्राप्त करने

के लिए सदैव परिश्रम करता है जीव का स्वभाविक गुण विराट् स्वरूप का प्रदर्शन करना है किन्तु प्रकृति का संसर्ग और भिन्न २ संस्कारों के कारण जीव की वासना ही उसे संकीर्ण बना देती है इसलिए जीव की श्रद्धा प्रकृति के साथ मिली हुई मोह-आदि दुष्परिणामों को प्रगट कर सकती है जीव इसी वासना से निकल कर ब्रह्म के संसर्ग से प्रकृति के सब भावों पर शासन करता है इसलिए जीव मोह-शोक-आदि संघर्षों से पृथक् होकर अद्वैत तत्व का निदर्शन बन सकता है जिस श्रद्धा का स्वरूप आत्मा के गुणों का विकास है वह श्रद्धा कर्मठ जीवन जीव के लिए देकर भ्रान्त नहीं करती है सामर्थ्य भावों के बिना प्रत्येक वस्तुओं में आस्था करके जीव भ्रान्त बन सकता है इस लिए वासनाओं के जाल से मोक्ष पाने के लिए श्रद्धा से पृथक् रह कर आत्मान्वेषण ही जीव का प्रधान कर्तव्य होगा जिससे जीव निर्द्वन्द भाव को प्राप्त कर लेगा।

देहादिकर्म प्रभवं व्यसनं दधानः।
मत्वा ह्यनात्मकुगतीन् ननु चात्मरुपान् ॥
बद्धः स्वयं भवति मुग्धमना विकारैः।
मुक्तस्ततः सुनियमः खलुप्रैति तत्त्वम् ॥

भावार्थ—देहादि कर्मों से पैदा होने वाले व्यसनों को धारण करता हुआ अनात्माके भावों को आत्मा का स्वरूप समझता हुआ व्यसनों के कारण पतित मन वाला विकारोंके साथ अपनी इच्छा से बंधा हुआ माना जाता है उस बंधन से पृथक् होकर मर्यादा पूर्वक मानवता के नियमों को पालन करता हुआ आत्मा के रहस्य को प्राप्त कर सकता है आत्म शुद्धि-आत्मशोध करने वाला सुखी हो सकता है इस संसार में जीव आत्मा के सूक्ष्म भावों को छोड़ कर इन्द्रियों की पशुता वृत्ति के कारण स्थूल पदार्थों के साथ प्रेम करने लगता है इसी कारण भ्रांतियों का केन्द्र बन कर जीव विविध मार्गों पर चलकर व्यर्थ सा हो जाता है फिर जीव और ब्रह्म दो वस्तु बन कर अद्वैत तत्त्व की बाधा सी बन जाती हैं यदि जीव इन्द्रिय जन्य विलासों से पृथक् हो कर विचरण करता है तो वह ब्रह्म का स्वरूप बन जाता है इसलिए यदि जीव अपनी इन्द्रियों को आत्मा के स्रोत से चैतन्याऽवस्था में रखेगा तो इन्हीं इन्द्रियों से जीव ईश्वरीय कर्मों को करता हुआ लोक में शान्ति का कारण बन जाता है और कुसंस्कारजन्य विचारों पर नियन्त्रण न करके जीव स्वयं विपत्ति और बाधा को पैदा करता है शास्त्रीय मर्यादा का नियम पूर्वक पालन करने वाला मानव व्यर्थ की कल्पना से भ्रान्त नहीं हो सकता है

इस लिए जीव अपना अभ्युदय स्वयं अभ्युदय से ही कर सकता है। २१

व्यर्थं कृतेन्द्रियसुखं गणयन् मनस्वी।
स्वीयै गुणैश्च जगता विदधन् न भेदम्॥
ब्रह्मैकभावसुखितो हि शिवः क्षितीशः।
अध्यात्मरम्यरमणः खलु केवलः सः॥ २२

भावार्थ—व्यसनों से निर्माण किए हुए इन्द्रियों के सुख को व्यर्थ करता हुआ आत्म भाव में व्यवस्था पूर्वक विचरण करने वाला मानसिक भावों को जानने वाला अपने गुणों के द्वारा जगत् से भेद न करने वाला आत्मा के सुन्दर भावों में क्रीड़ा करने वाला सम्पूर्ण पृथ्वी के पदार्थों पर शासन करने वाला एक शिवरूप आत्मवेत्ता ही हो सकता है क्योंकि कल्याण रूप वनने वाला जीव इंद्रियों से परे होकर रहता है सदा संसार की वस्तुयें जीव को उच्छृंखल मार्ग में चलानें के लिये प्रेरणा देती हैं किन्तु आत्म मनन से विकसित होने वाला जीव अपने सत्य अभिनय से संसार को अपने में मिलाता हुआ सब पदार्थों व भूतोंके लिए आकर्षण केन्द्र वनता है फिर संसारके कृत्रिम पदार्थ उस पवित्र जीव का चारों ओर से अभिषेक करते हुए उस

जीव की ध्वनिसे ध्वनित हो जाते हैं सारा संसार उस जीव के संकेतों से चैतन्य वृति को प्राप्त करता है और संसार का कण २ उस विराट् रूप जीवको प्रशंसित करता है इस लिये अद्वैत भावना ही सब पर शासन कर सकती है अपने शुभ उद्योगों का बलिदान यदि जीव सहर्ष करता है और दीन-दुःखी-बलहीनों के लिये सत्य परिश्रम से यदि मानव बन कर जीव सुविधा बनाता है तो ब्रह्म का निर्माण प्रत्यक्ष हो जाता है इसी से जीव और ब्रह्म की साम्यता होगी। २२।

मुक्तश्च केवलजनः प्रलयान्ततत्वः ।
सत्यं शिवं सः सुखमुपैत्य गुणै : कृतात्मा ॥
देहाऽभिमानविपदं हि विमुच्य योगी ।
एकं निजं सुखमयं दधते विदित्वा ॥ २३ ॥

भावार्थ—यम-नियम-आदि गुणों द्वारा शुद्ध स्वरूप वाला प्रलय के बाद सूक्ष्म रूप से रहने वाला अर्थात् प्रलय कालीन सम्पूर्ण लीला को जानने वाला संसार के बन्धनों से सदा पृथक् रहने वाला आत्मा के सकल विचारों वाला सत्य और कल्याण प्रद पद को प्राप्त करके शारीरिक अभिमानादि दुःखों को छोड़ कर अपने कर्तव्यों

में अनन्य सुख मानने वाला प्रत्येक कार्य में संसार के लिये कुशलता को धारण करने वाला प्रशंसनीय आनन्द भाव को प्राप्त करता है निरन्तर कर्मों की शृंखला को मर्यादा में रखता हुआ ईश्वरीय भावों वाला जीव सुन्दर और सत्यसत्ता का बोधक बनजाता है तीनों लोकों की अवस्था को जानने वाला जीव इन्द्रियों के विकारों से दूर होकर आत्म तत्त्व का अन्वेषण करता है यदि जीव के सामने बाधा आयें तो वह विचार शक्तिसे शीघ्र ही पृथक् कर देता है इसी लिये अद्वैत चिन्तन जीव के लिये श्रेयस्कर होगा जीव शान्त रूप होगा जब एकत्व वाद की भावना जीव करता है तो उसके अन्दर आशा का संचार होता है और आशा शिव संकल्प रूप बन कर उसे आस्तिक और आत्मनिष्ठ बना देती है जिससे जीव की विभूतियां सर्वत्र फैलाकर अद्वैत वाद की बोधक बनती हैं एक आत्मा के रूप को जान कर जीव आनन्द मय हो जाता है ॥ २३

यावन् मनो विचलितं भवति भ्रमै वैं ।
तावद् विकर्म सरतो भुवनेऽवभासः ॥
स्वीयां गतौ चपलतां न निरीक्ष्यचेतः ।
मोक्षं द्रुतं सुखमुपैति हि वासनायाः ॥ २४

भावार्थ—जब तक मन चपल गति से चलता है तब तक मनुष्य भ्रान्तियों से युक्त रहता है, व्यसनी जीव को ही कर्मों के दुरुपयोग रूपी सरोवर का संसार में प्रकाश सा प्रतीत होता है संसार में चित्त अपनी चंचलता को विचार कर अर्थात् चपलता पर नियन्त्रण करके जन्म जन्मान्तरों की वासनाओ से शीघ्र मुक्त होकर मोक्ष रूप सुख को प्राप्त करता है जीव का चपल भाव प्रत्येक क्षण दुःखदाई होता है, कुसंस्कारों के प्रपंच में पड़ कर जीव सदा कृत्रिम भावों को सत्य ही समझने लगता है इसलिए आत्म-बोध से दूर रह कर विविध वासनाओं का स्थान बन जाता है यदि जीव नियमित और मर्यादित भावों के साथ आत्मा का मनन करके अपने संस्कारों को ईश्वरीय तत्त्वों में जोड़ देता है, तो निश्चित ही वासनाओं का क्षय होकर विशालता का भाव प्रगट होता है। इसीलिए जीव को आत्म-चिन्तन से कल्याण होता है। मनको नियन्त्रित करके जीव अनित्य साधनों से नित्यता का पाठ पढ़ता है। २४

संस्कारजा बलवती ननु वासना सा।
बन्धे करोति विदुषोऽपि सदैव बद्धान् ॥
मुक्तस्तया जयति सर्वहितं हि जीवः।
शिष्यां च शासति कृतिं खलु केवलोऽसौ ॥ २५

भावार्थ—संस्कारों से पैदा होने वाली वह वासना बलवान् गिनी जाती है वह वासना ही बड़े २ विद्वानों को उनके कर्मों के द्वारा पराधीन करती हुई बन्धन में गिरा देती है, इस लिए वासना का त्याग करना कल्याण प्रद होगा। जीव उस वासना से मुक्त होकर अपनी बुद्धि प्राबल्य के कारण उस वासना के साथ २ संसार के सम्पूर्ण हित मार्गों को जीत लेता है वह जीव रूप होकर शुद्ध भावना वाला ब्रह्म होकर वा शिष्य रूप माया पर शासन करता है और ब्रह्म का स्वरूप बन कर विशालता का पाठ सब को पढ़ाता है संसार की वासना जीव को सब ओर से ही आशावान् बनाती हुई उसके हृदयपट में अपना स्थान बनाती है यदि जीव स्थूल इन्द्रिय जगत् से पृथक् हो जाये तो वासनाओं का क्षय निश्चित है क्योंकि जीव तब आत्मानन्द में तन्मय हो जाता है अन्यथा जीव से इस बलवान् वासना का प्रतिकार करना कठिन है जन्म-जन्मान्तरों केभावों से अभ्यस्त जीवों को वासना ही गिराती है औरपशुता का वातावरण बनाती है, अधिकारी जीव उसी वासना के साथ रहकर भी संसार का शासन करता है इस लिए अद्वैत भावना जीव के लिए हितैषी होगी कमल-पत्र की नाईं जीव संसार से साधनों की पुष्टि करता हुआ भी

पृथक् और सुन्दर बन कर रहे अन्यथा पङ्क का सम्भार जीव को घृणा का पात्र बना देगा ॥ २५

तस्याः क्षयात् सुखमयो भुवि जायते यः ।
ब्रह्म भ्रमाच्च रहितो मनुते निजं सः ॥
गोवासनाविनयनाद् भवति प्रभावी ।
निर्द्वन्दकार्यप्रकृतिः कुरुते स्वराज्यम् ॥ २६

भावार्थ—उस वासना के नष्ट होने से जो संसार में आनन्द मय जीवन वाला बन जाता है वह भ्रान्तियों से दूर होकर अपने स्वरूप को ब्रह्म समझता है इन्द्रियों की वासना दूर होने से मनुष्य निर्द्वन्दता के कार्य में रुचि करने वाला और प्रभाव शील हो जाता है और अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित करता है वासना मनुष्य की न टूटने वाली शृङ्खला है किन्तु वासनामय शृङ्खला को यदि हम अपने दोषों के लिये उपयोग करते हैं तो आत्म-विचार होने के कारण हम वासनाओं के पात्र नहीं बन सकते हैं परोपकार के लिये सोचा हुआ यन्त्र परोपकार की दृष्टि में हमें प्रेरित करता है मनुष्य सब का मित्र बन कर जीव कोटि से निकल कर ईश्वरीय तत्त्व का विस्तार करता है इसी से मनुष्य की भावना तेजोमयी होकर जीवों के

अन्धकार को जन्मान्तरों के आवर्ण को दूर करती है इस लिये जीव इन्द्रियों के प्रपंच की भावना को छोड़ आत्मस्रोत से सम्बन्धित व्यवहारों का सम्पादन करे फिर भ्रम जाल से पृथक् हो कर ज़ीव शान्त होगा शान्त मनुष्य वासनाओं के जाल से दूर होकर सूक्ष्म विचार कर सकता है फिर उसी का विचार ही ईश्वर की नाईं नव निर्माण करता हुआ ब्रह्म का प्रतीक होता है। २६

यद्वासनासुजनितं क्षयति स्वयं तत् ।
भूमौ च निश्चितधिये न भयं न सौख्यम् ॥
चित्तं हि चंचलगति भ्रमितं यदा नुः ।
धत्ते तदैव निखिलं ननु कर्मजातम् ॥ २७ ॥

भावार्थ—वासनाओं से पैदा होने वाला जो भी कार्य दृष्टि गोचर होता है वह स्वयं ही नष्ट हो जाता है संसार निश्चित बुद्धि वाले के लिये भय और विलासों के भाव बाधारूप नहीं होते हैं अर्थात् वैराग्य के साथ विचरण करने वाले दृढ़ विचारों वाला वासना शून्य होने से सर्वत्र सुखी रहता है क्योंकि उस पवित्र जीव के कार्य आत्मा की प्रेरणा से होते हैं वासना के प्रपंचों के द्वारा नहीं होते हैं इस लिये कर्तव्य पालक जीव के लिये लाभ-हानि-सुख-

दुःखादि नहीं होते हैं जब तक मानव का मन चपल भावों वाला होकर व्यसनों में भ्रान्त रहता है तब तक ही मन सब कार्यों के भावों को धारण करता है इसलिये चित्त की स्थिरता मानव जीवन के लिये शान्ति का स्थान है क्योंकि संसार के जितने भी भाव होते हैं उनमें यदि आनन्द और शान्ति का अभाव होता है तो वह भाव शोक-मोह-संघर्ष का केन्द्र बन जाते हैं जो भाव संसारियों के लिये ईश्वरीय प्रदर्शन करते हैं तो उन भावों में नाम मात्र के पाप-पुन्य-सुगन्धि-दुर्गन्धि आवर्ण रूप से होती हैं अन्तस्थल से वासनाओं के निकल जाने पर जीव सुरक्षित हो सकता है वासनाओं का क्षय स्वयं सेवक के कार्य में प्रत्यक्ष देखा जाता है क्योंकि उस कार्य में तन्मयता अपने पूर्ण लक्ष्य के साथ होती है इस लिये यदि मन के भावों को जीव एकता में लगाता है तो संसार विस्तृत होता हुआ भी जीव को एक सूत्र ही भान होगा। २७

संसारभावहृदयो व्यथितः पदार्थैः ।
चित्ते च निश्चितपथे न गति र्न कर्ता ॥
स्थाने विशेषगमने न भवाब्धि मोक्षः ।
भूमौयसी हि लभते स्वतपः प्रभावम् ॥ २८

भावार्थ—अनेक पदार्थों के साथ २ संसार की भावनाओं में मन लगाने वाला जीव दुःखी होता है निश्चित मार्ग वाले चित्त के होने पर कोई आश्रय और आश्रय को बनाने वाला नहीं होता है अर्थात् तन्मयता की अवस्था में आत्मवेत्ता अपने सिवा शून्य भावों को देखता है विशेष गमन वाले स्थान में जीव के जाने पर संसार से मोक्ष नहीं हो सकता है क्योंकि मनकी स्थिरता के बिना वासनाओं का विनाश नहीं हो सकता है जितेन्द्रिय मनुष्य संसार के प्रत्येक स्थल में अपने तप के प्रभाव को प्राप्त कर सकता है जीव विवेक के साथ और अपनी तप शक्ति के द्वारा यदि व्यवहारों को अपनाता है तो वह मोक्ष के मार्ग पर चल कर वासना रूप विपत्ति से मुक्त हो जाता है संसारिक विशेषता व साम्प्रदायिक भावना के कारण केवल बाह्यरूप से इन्द्रियों का पुजारी बन कर जीव कभी भी वासनाओं के क्षय को नहीं देख सकता है इसलिए अपने ध्येय में लगा हुआ जीव पाप पुन्य से रहित होकर स्थिरप्रज्ञ हो जाता है जिससे दिव्य और दृढ़ विचारों के कारण आदर्श का पालन करता हुआ जीव ईश्वरीय भावों का निर्माण करता है केवल पदार्थों की कृत्रिमता में रहने वाला जीव दुखी हो जाता है क्योंकि प्राचीन और अर्वाचीन वासनाओं का जीव केन्द्र हो जाता है इसलिए इन्द्रियों का नियन्त्रण

आत्मा से होने पर वासनाओं का विनाश होकर तन्मयता का विस्तार बढ़ेगा अपने कार्य की सिद्धि शुभ साधन और शुभ विचार से जीव कर लेता है इसलिए जीव कर्मठ बन कर भी संसारियों की अपेक्षा करे क्योंकि भार संभालने वाला तन्मय होता है। २८

शान्ति न याति परिणामफलां मुमुक्षुः।
सर्वाशया भुवि विना विचरन् हि मुक्तः॥
संकल्पजातमपि संशययुक्तमूनम् ।
त्यक्त्वा हि सुन्दरजनो व्रजति क्रमैस्तम्॥ २६

भावार्थ—मोक्ष के भावों वाला मनुष्य संसार में सम्पूर्ण आशाओं के बिना ही कर्मों को अपनाता हुआ मुक्त पुरुष माना जाता है और आशाओं के प्रपञ्च में रहने वाला मोक्ष का यात्री आत्म सुख के स्थान रूप शान्ति को नहीं प्राप्त कर सकता है सन्देह से युक्त और विविध इच्छाओं से पैदा होने वाले क्षुद्र भावों को छोड़ कर यम-नियमादि भावों से आकर्षण का केन्द्र रूप साधारण मनुष्य मर्यादा के साथ २ उस मोक्ष को प्राप्त करता है संसार की प्रत्येक वस्तु शान्ति-क्रान्ति-ज्ञान और विज्ञान से युक्त हो कर संसार में उपस्थित है अपने गुणों द्वारा सुन्दर भावों को प्राप्त करने वाला अपने अन्तःकरण के अधिकार शून्य

संकल्पों को निश्चित विचार से व ध्येय से यदि पराजित करता है तो जीव ईश्वरीय भावों को प्रगट करने में सामर्थ्यवान् होगा क्योंकि इच्छाओं का दमन ही हमें प्रखर तेजस्वी बनाता है मनुष्य स्वइच्छाओं को दूसरे प्राणियों की इच्छाओंसे मिलाने का यदि यत्न करता है तो संसार में अनुचित भाव कभी भी विस्तार न पायेंगे क्योंकि व्यक्ति का अभ्युदय समाज का अभ्युदय हो जाएगा मोक्ष का अधिकारी अपने लिए और दूसरे के लिए विशेष सुविधा का निर्माण करता है इसलिए आवश्यकताओं की अधिकता मनुष्य को पतित करती है। २९।

मोक्षं गुणैरुपगतो जनताहितार्थम् ।
आशाक्षयः सुनियमैर्जगतां हि मोक्षः ॥
चेतो विनश्यति यदा कथितो हि मोक्षः ।
दुःखं तदैव न सुखं भुवने विचित्रे ॥ ३० ।

भावार्थ—जगत् के हित वाले मोक्ष को मनुष्य अपने गुणों द्वारा प्राप्त करता है अर्थात् लोगों के लाभ के लिए जन्म लेने वाला मानव अपनी तपस्या से मुक्त होता है पवित्र मर्यादाओं के कारण आशाओं का विनाश ही जगत् में रहने वाले मनुष्यों का मोक्ष है चित्त जब विनाश को प्राप्त होता है तब मोक्ष का संचार होता है उस समय इस

संसार में जीव के लिए सुख और दुःख नहीं होते हैं इस गम्भीर और विविध आश्चर्यों के कारण विचित्र संसार की अवस्था आवश्यकताओं की न्यूनता से सुन्दर बनती है जीव यदि अपने नियम और धर्म कृतियों के साथ २ चलता है तो संसार में उस जीव का जन्म सार्थक माना जाता है अपने कर्तव्य के पालन से जीव वासनाओं से पृथक् हो कर एक अपूर्व सुख का निर्माण करता है क्योंकि स्थूल शरीर के व्याधिरहित होने पर भी चित्तवृत्ति के ईश्वरीय होने पर जीव ब्रह्म हो जाता है फिर सुख दुःख के भाव जीव को कैसे बन्धन में गिरा सकते हैं निर्द्वन्द भाव ही मोक्ष का कारण है इसलिए जीव महत्त्वाकांक्षा के साथ अपने अन्दर प्राणियों के लिए बलिदान की भावना को जागृत करता है तो अबाध रूप से शान्ति का प्रसार होता है मन की व्यर्थ कल्पना और संस्कारों की भावना जब नष्ट हो जाती है तब आत्म स्वरूप के होने पर सुख दुःख का अभाव होता है। ३०

चित्तेन चञ्चलगुणेन सुखं न भूमौ।
सम्प्राप्यते च नियमैः प्रकृते विंलासैः ॥
सर्वां विमुच्य लसितां प्रकृतिं सुचेताः।
मोक्षं च गच्छति मनोविभवेन जीवः ॥ ३१

भावार्थ--संसार में चपल गुण वाले चित्त से प्रकृति के विलासों के साथ २ स्वच्छ नियमों द्वारा मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं होती है चित्त के व्यर्थ विचारों से शून्य मनन शील जीव सर्वत्र कृत्रिम प्रकाशमय संसार के विस्तार को छोड़कर जीव आत्म स्रोत से पवित्र और सुप्रज्ञ मन के भावों से और आदर्श व्यवहारों से मोक्ष को प्राप्त करता है सदाचारी मनुष्य प्रकृति पर आधिपत्य करता आया है विलासों की भ्रान्ति जीव अशान्ति के चक्र में घुमाती हुई नए २ स्थूल जगत् को बनाती औरबिगाड़ती है इसलिए आत्म संतोष और मनोनिग्रह के साथ अपने पूर्वज और इतिहास वेत्ताओं के साथ २ शुभाऽनुकरण से ही कर्तव्य पथ पर जाकर शान्ति को प्राप्त करता है परिणाम में शान्ति वाले कार्य फिर जीव से प्रतिक्षण होते रहते हैं इसलिए जीव ब्रह्ममय हो जाता है नियम पूर्वक संसार की व्यवस्था को करने वाला किन्तु विलासी इन्द्रियजन्य भावों के आधीन रहने वाला जीव प्रकृति के विकारों को नहीं रोक सकता है क्योंकि तन्मयता का अभाव मोक्ष सुख से पृथक् रहता है सत्यता के साथ अपनी अपरिमित शक्ति को जान कर मन के अनन्त गुणों से आत्मानन्द को प्राप्त होता है चपल मनुष्य कभी भी पूर्ण सफलता का पात्र नहीं

होता है इसलिए सर्वत्र सर्वदा हमें संयमी बनना होगा ॥ ३१

लोके प्रपञ्चनिरते भवति क्व सौख्यम् ।
मायागुणी स्थलकृती न च याति तत्त्वम् ॥
सूक्ष्म प्रकारकुमति र्भजते न भव्यान् ।
सत्यस्यमार्गणमना स्त्यजति प्रपंचम् ॥ ३२

भावार्थ—नाना प्रकार के माया जाल युक्त इस लोक में सुख कहां है माया के गुणों वाला संसार के कार्यों में चतुर आत्मा के भावों से पृथक् रहने वाला जीव सत्य के रहस्य को नहीं प्राप्त कर सकता है। सूक्ष्म भावों के अन्वेषण में मन्द बुद्धि जीव सौन्दर्यमय पदार्थों को प्राप्त नहीं कर सकता है, सत्यता को जानने के लिए प्रयत्न करने वाला प्रपंचों को छोड़ देता है अर्थात् जीव जन्मान्तरों के संस्कारों से संसार जन्य वासनाओं को छोड़ सकता है यदि जीव के प्रत्येक कार्य में सत्य की खोज उपस्थित है। संसार में बाह्य प्रकृति के विस्तार व कृत्रिम सौंदर्य से जीव प्रायः मोहित हो जाता है। स्थूल पदार्थों को जानने वाला जीव सूक्ष्म भावों को स्मरण नहीं करता है क्योंकि उसका अभ्यास स्थूलता में है इसलिए सत्य रहस्य को जानना ईश्वरीय और सूक्ष्मता का विस्तार हुआ

करता है जिनमें विचरण करता हुआ जीव ईश्वर बन जाता है अपने नियत धर्मों को छोड़ कर व्यर्थ कल्पनाओं के जाल में गिरना जीव का स्वभाविक धर्म नहीं है परन्तु स्थूल बुद्धि के कारण जीव शुभ दशाओं को नहीं देखता है स्थूल जगत् का पूर्ण अन्वेषक भी सत्य रूप आत्मानन्द से दूर रहता है। ३२ ।

सन्दिग्धकर्मनिकरै जगतः प्रपञ्चैः ।
संदृश्यते निजभयं गुणमुग्धधातुः ॥
मायां विहाय सुमनाः सुतपः प्रभावात् ।
धत्ते निवासमजरं स शिवश्च योगी ॥ ३३

भावार्थ—संशय वाले कर्मों के भार से जगत् के आडम्बरों से कृत्रिम गुणों के द्वारा ब्रह्मादि महान् शक्तियों को मोहित करने वाले संसार से आत्मा के लिये भय प्रतीत होता है संसार की माया को छोड़ कर सच्चरित्र जीव अपनी तपस्या के प्रभाव से जो अक्षय निवास को धारण करता है वही कल्याण रूप कर्मठ माना जाता है यह संसार कृत्रिम सौंदर्य वाले गुणों द्वारा महान् व्यक्तियों को मोहित कर लेता है कितने ब्रह्मा-विष्णु और शङ्कर इस संसार में प्रकृति प्रपंच के आगे मुग्ध से बन गये हैं इस लिए जीव प्रपंचमय जगत् के व्यवहारों के साथ २ साव-

धानता नहीं करता है तो जीव को स्वच्छ कर्मों से भी बन्धन हो जाता है इसलिए प्रकृति का उपयोग ही समयानुसार जीव के लिए हितैषी मार्ग है और उस उपयोग में भी कर्तव्य की भावना हमें पाप-पुण्य से हानि-लाभ से सुख-दुःख से दूर ले जाये, तब जीव निश्चित मार्ग पर चल कर ईश्वरीय तत्त्वों का अन्वेषण करता है और वह नित्य विराट् माना जाता है सदा ही जो संसार में पवित्र बन कर भी भविष्य के भावों से सावधान रहता है वह अपने कर्तव्यों द्वारा सुन्दर नाट्य विधियों को पूर्ण करता है अन्यथा विचित्र संसार जीव को प्रलोभनों द्वारा पराधीन बना देता है इसलिए कर्मठ बन कर भी प्राणियों के हित के लिए अकिंचन सा रहे इसी से जीव ईश्वर की साम्यता में मिल जायेगा । ३३ ।

द्वैतं स्वकीयममृतं मनुते प्रपंची ।
वेत्ति स्वयं न सुगतिं परमार्थ शून्यः ॥
अद्वैतभावमधिगम्य जनश्ज सौम्यः ।
दुःखं जहाति सुसवि विंरलो मनस्वी ॥ ३४

भावार्थ—विविध आडम्बरों को करने वाला अपने द्वैत भाव को अमृत मानता है परमार्थ के भावों से शून्य जीव अपनी उच्छृङ्खल वृत्तियों से सुन्दर भावों को प्राप्त

नहीं करता है शान्त मनुष्य अद्वैत भाव को प्राप्त करके अपने मित्रों के साथ प्रत्येक वस्तु का मनन करता हुआ दुःख और संघर्ष को छोड़ देता है संसार में दुविधा ही हमें असफलता का पाठ पढ़ाती है अपने प्रयत्नों में सफल जीव सदा ही लोगों के हित को अपना हित समझता है जीवों का सफल विचार अद्वैत भाव से बनता है क्योंकि जहां चिन्तन करने के लिए कुछ नहीं है वहां विवेक को शान्ति मिलती है संसार के आडम्बर कृत्रिम भावों को पैदा करते हैं इस लिए जीव का विवेक अशान्त सा हो जाता है जीव इन दुःखों को तब दूर कर सकता है जब जीव विराट् और सुन्दर आकर्षण बनता है सदा मनुष्य अपने व्यक्तित्व को मित्रों में, बन्धुओं में और संसार के अधिकारी प्राणियों को विभक्त करता हुआ अविभक्त सा होता है और अपने को अयाचक और सामर्थ्यवान् करता हुआ सीमाओं का उल्लंघन नहीं करता है वह जीव ईश्वरीय साभ्यता का प्रतीक बनता है और सद्‌गुणों के कारण उपास्य हो जाता है ॥ ३४

कैवल्यधामकथितः सदसि स्तुतो यः ।
शुद्धः करोति जगतः पतितान् विशुद्धान् ॥
अद्वैततत्त्वसुगुणैश्च सदा प्रसन्नः ।
चादर्शगम्यगमनः स शिवः स योगी ॥

भावार्थ—सभा में प्रशंसित होने वाला मोक्ष के मार्ग में जाने वाला जो अद्वैत भावों के कारण और अपने गुणों द्वारा प्रसन्न रहता है और जो स्वयं पवित्र बन कर पतित मनुष्यों को पवित्र करता है वह कल्याण का स्वरूप और सदा ही कर्मों की मर्यादा का पालन करने वाला योग्य औरनियमित भावों को अपनाने वाला मुक्त जीव माना जाता है संसार में कर्मों का उपार्जन परिश्रम से सरल भी हो जाता है, किन्तु उपार्जित कर्मों को सुरक्षित रखना कठिन सा है इस लिए पवित्र सदा ही अन्य जीवों को पवित्र बनाता है। शान्त मनुष्य अपने गुणों द्वारा सर-लता और मधुरता को अपनाता हुआ साधारण मनुष्यों के लिए सुविधा जनक कार्य करता है, इन्हीं भावों के कारण जीव कल्याण का स्वरूप बनता हुआ ईश्वरीय भावों में मिल जाता है इस लिए जीव विराट् है। जब जीव की अवस्था अपने जीवन को कला का रूप देती है तब जीव अव्यक्त सौन्दर्य को व्यक्त करने लगता है सत्य पूर्ण जीवन-यापन ही आदर्श का स्रोत बनता है स्वार्थ त्याग से जीव जीवन रूप कला को योग्य पथ में प्रदर्शित करता है इस लिएजीव अद्वैत भावों से ही शोभित होता है ॥ ३५

वस्तूनि सुन्दरगृहाणि सुरम्यभावैः ।
अन्यान् गतौ रतिमतीन् ललितान् सुजन्तून् ॥
एतांश्च प्रेक्ष्य भवति स्वधिया हि बद्धः ।
ज्ञाता हि तत्त्वसरसां मनुते न सत्ताम् ॥

भावार्थ–सुन्दर भावों के साथ २ शोभित केन्द्र वाली वस्तुओं को और संसारमें शुभ बुद्धि वाले इन सुन्दर मनुष्यों को देख कर जीव अपनी बुद्धि के संस्कारों से बंध जाता है मोक्ष रूपी नदी की गम्भीरता का जानने वाला प्रकृति की भावनाओं को नहीं समझता है क्योंकि लक्ष्य के ऐक्य भाव में होने पर जीव को दूसरी वस्तु प्रतीत होती ही नहीं है जीव-ब्रह्म की साम्यता होने पर यह संसार शून्य सा होता है, संसार की सुन्दर वस्तुओं को जीव यदि अपना नहीं समझता है तो वह संघर्ष और विपत्तियों का कारण बन जाता है। यदि मर्यादा पूर्वक सूक्ष्म विचारों के साथ सब वस्तुओं का उपयोग करता है, प्रकृति पर जीव आधिपत्य करता है और प्रकृति की सारी भावनायें उस जीव के संकेत से चारों ओर भ्रमण करती हैं संसार के प्रलोभनों में आकर जीव अपनी सत्ता को यदि नहीं भूलता है तो संसार के प्रलोभन पवित्र जीव के उपयोग से प्राणियों के हितैषी बनते हैं जीव सूक्ष्मता को जान कर प्रत्येक

कार्य में परिणाम को ढूंढता है जीव की सत्ता प्रकृति सत्ता से अधिक व्यापक है इस लिए सदाचारी जीव प्राणी मात्र का हितैषी अपने कर्मों से बन सकता है क्योंकि सत्यता शीघ्र फैलती है ॥ ३६

वाचा तु केवलमिदं कथयन् प्रतीतम् ।
पात्रं घटश्च विविधेन गुणी सुनाम्ना ॥
कर्तुं जगल्लसितकर्म दधाति मायाम् ।
सत्यं विलासमृतकेयमिह प्रसिद्धम् ॥ ३७

भावार्थ—यह पात्र है यह घट है केवल वाणी मात्र से प्रसिद्ध पात्रादि को विविध नामों से गुणी पुरुष कहता हुआ इस संसार को सुन्दर कर्म वाला बनाने के लिए कृत्रिम रूप से माया को धारण करता है इस न्याय से कृत्रिम लीला के लिए यह मृतिका ही प्रसिद्ध है इस लिए जीव अपने संस्कारों द्वारा विविध जाति-वर्ण व गुणों को धारण करता है परमार्थतः जीव की वासना ही इस में कारण है, यह सारा संसार स्थूलता के भावों से संघर्ष का कारण है सूक्ष्मता से यदि विचार किया जाये तो यह संसार जीव की नाट्य स्थली है क्योंकि विराट् ही भिन्न २ भावों और नामों से प्रतीत होता है इसलिए अद्वैत तत्त्व ही जीव को

ईश्वर बनाता है और उसी में रहने वाला जीव ईश्वर ही है केवल तत्त्व वेत्ता प्राणियों के उद्धार के लिये विविध अभिनयों के द्वारा सौंदर्य का विस्तार करता है अनेक प्रकार का ज्ञान और संज्ञाओं की महिमा केवल अज्ञानि जीवों को सुमार्ग पर लाने के संकेत ही हैं पूर्ण विद्वान् जैसे वर्णमालादि को अपने लिए व्यर्थ समझता है किन्तु उसे दूसरे प्राणी के लिए सार्थक और आवश्यक समझता है वैसे तत्त्ववेत्ता सामर्थ्यवान् बनकर प्राणियोंका हित आवश्यक समझता है सत्यता का स्वरूप जान कर जीव प्रचलित मर्यादाओं का पालन कराता हुआ भी अभ्युदय के लिए नये भावों की रचना करता है क्योंकि जीव तत्व ही वेत्ता होता है ॥ ३७

भिन्नानि भूषणपदानि हि धातुरेकाः ।
अङ्गं च प्राप्य रुचमाभुवनं मनीषी ॥
वेदान्तरम्यशरणं च बिना विमुग्धः ।
विद्याविलासरमणो लभते न सौख्यम् ॥ ३८

भावार्थ—विविध प्रकार के भूषण दिखाई देते हैं किन्तु उनका धातु एक ही है सम्पूर्ण संसार में विद्वान् मनुष्य संसार के सुन्दर एक अङ्ग को प्राप्त कर के विद्या

की प्रौढ़ स्थली में क्रीड़ा करने वाला भी व्यसनों के कारण मोहित हुआ२ वेदान्त रूप शोभित आश्रयके बिना संसार के भिन्न-भिन्न भागों में सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है सब वस्तुओं का आधारभूत ब्रह्म है इसलिए ब्रह्म के ज्ञान के बिना सब ऐश्चर्य निरर्थक हैं जैसे धातु के ज्ञान के बिना भूषणों में भ्रान्ति होती है ऐसे सब वस्तुओं में भ्रांति हो सकती है इसलिए परिवर्तन होने वाले पदार्थों में यदि एक ज्योति का भाव हम नहीं कर सकते हैं तो हमारा व्यवहार कलुषित होगा इसलिए हम संसारमें प्रत्येक पदार्थके साथ २ उस अनन्य ज्योति के उपासक बनें, जिसने संसार की व्यवस्था नियमित की है उसी का भान हमारे में है यदि हम तन्मयता से उसे देखें नाना प्रकार के व्यसनों के कारण भ्रान्त बुद्धि वाला प्राणी आत्म विचार से शून्य होता है क्योंकि विविध भागों का सौन्दर्य भ्रान्त मनुष्य को अनेक लक्ष्यों में घुमाता है इसलिए विविध अंगों को सर्वस्व समझ कर मनुष्य अपने जन्म को सार्थक नहीं कर सकता है प्राणी कितना ही विद्वान् कितना ही कुशल हो कितना तपस्वी हो वेदान्त लक्ष्य-च्युत सब में धोका प्राप्त कर सकता है। एक ब्रह्म की सहानुभूति वाला सुखी होता है ॥ ३८

चक्रं तरंग गमनं जलमेव सर्वम् ।
गाधश्च बुद्बुदमिदं यदपि प्रधानम् ॥
तोये विभाति रुचिरं सफलञ्च धन्यम् ।
ब्रह्मस्वरूपसुगुणस्य तथा विलासाः ॥ ३९

भावार्थ—जल की गम्भीरता-जलके बुलबुले-जलका आवर्त और जल की तीव्र तरंगें, जो भी जल में योग्य और सुन्दर रूप दिखाई देता है वह सब जल की ही महिमा है जो संसार का उपकार करने वाली सुन्दरता दृष्टिगोचर हो रही है वह जल ही में शोभित हो रही है ऐसे सगुण रूप ब्रह्म के गुणों के यह विभक्त हुए २ जगत् के विलास मात्र हैं अर्थात ब्रह्म के विना यह जड़ जगत कुछ भी नहीं है जैसे जल के विविध रूप जल ही हैं ऐसे सर्वत्र ब्रह्म के विना सब शून्य है हम यदि उसी विलास की महिमा में तन्मय हो जायें तो ब्रह्म हमारे से भिन्न नहीं है वस्तुओं का उपयोग जैसे व्यवस्था का स्रोत है वैसे अपनी भावनाओं का उपयोग ही ब्रह्म है इसलिये यदि हम अवसर की भावनाओं को जान कर चलेंगे तो हम जगत के शासक हो सकते हैं क्योंकि हमारे व्यक्त विलास अव्यक्त गुणों को धारण करते हैं सगुण रूप से ब्रह्म की नाईं हम प्राणि मात्र के हितैषी बनकर ब्रह्माण्ड की ज्योतियों के

नियामक बन सकते हैं, किन्तु संसार के विविध आवर्त हमें भ्रान्त न कर सकें, उन आवर्तों का शुद्ध मार्ग बताने वाले हम ही हों हमारा जीवन फिर ब्रह्म की पृथकता का अनुभव नहीं करेगा और हम संसारियों के लिए अमृत बन जायेंगे इसी भावना से विश्व के प्राणियों में शान्ति का सञ्चार होगा एक ब्रह्म की उपासना हमें सुखी करेगी ॥३९

वादो गुरोः सुवचनाद्धि सुमन्त्रणा सा ।
तस्या ऋते न समयो न विवादभूमिः ॥
स्नाते च तत्त्वसरसि त्रपया मुमुक्षुः ।
लोकेच्छया जनितया भुवने स एकः ॥ ४०

भावार्थ—शुभ वचनों के साथ २ यह वाद रूपी प्रश्न गुरु के उपदेश मात्र ही हैं उस उपदेश रूपी भावना के बिना वाद विवाद का स्थल नहीं है न समय ही है ब्रह्म तत्त्व रूपी सरोवर में स्नान करने पर लोगों की इच्छा से पैदा होने वाली लज्जा के साथ २ और मर्यादा के साथ २ वह मोक्ष की भावना वाला प्राणी मात्र का हित करने वाला जीव एक ही ब्रह्म स्वरूप हो जाता है अर्थात् गुरु के वचनों का निमित्त ही मुमुक्षु जीव के मन में अमृत बन कर उसे ब्रह्ममय ही कर देता है क्योंकि प्रश्नों

की भूमि मुमुक्षु में नहीं होती है इसलिए जीव यदि अन्तः स्थल को क्रीडाङ्गन बना कर ललित नृत्य करता है तो उसे परम शान्ति मिलेगी जीव बाह्य जगत में सदा के लिये पृथक् प्रतीत होता है किन्तु उससे साधना को परिपक्व बनाने के लिये बाह्य रूपसे सगुणता का उपासक होना पड़ेगा अतः सत्य रूप से गुरु-शास्त्र और पूर्वजों का अनुकरण जीव के लिए एक प्रतीक है इसलिए जीव अपनी सत्यता को जान कर ब्रह्म हो जाता है किन्तु यदि सत्यान्वेषण लोक मर्यादा को नहीं छोड़ता है तो जीव की चेष्टायें सब प्राणियों के बन्धन मार्ग रोक देती हैं। ४०

निर्माणकारणयुतं च जगद्धिरम्यम् ।
तद् दृश्यते सुगुणिभिर्विषयैश्च गम्यम् ॥
सत्यस्य मार्गणमतिः कपटं न किञ्चित् ।
खल्वागतः प्रकथयंश्च शिवोस्मि भूमौ। ४१

भावार्थ—यह संसार विषयों द्वारा प्राप्त होने योग्य है और बाह्य भावों से सुन्दर प्रतीत होता है निर्माण सम्बन्धि सब साधनों से युक्त है और विद्वान् मनुष्यों के भिन्न २ भावों से व्याप्त है किन्तु सत्य को ढूंढने वाला

जीव इस संसार के साधन और साध्यों को कृत्रिम और कपट कहता हुआ सत्यता की गर्जना करता है कि मैं ही संसार में साक्षात् शिव रूप प्रकट हुआ हूं सदा अपने में विश्वास करने वाला निर्भ्रान्त जीव असीम शक्तियों का स्वामी है क्योंकि वासनाओं से रहित जीव ब्रह्म है इसलिए जिस जीव की जितनी वासना अधिक हो चुकी है वह उतना ही संसार चक्र में कृत्रिम बना हुआ है यदि जीव इन कृत्रिम वासनाओं को सत्य का रूप देता है और परहित चिन्तन में ही अपना अभिनय व्यतीत करता है तो जीव वासनाओं से पृथक् होकर जगत का अधिष्ठाता बन जाएगा और सब प्राणियों का शासक बन कर भी आकर्षण केन्द्र बन जाएगा क्योंकि व्यवस्था का भाव ब्रह्ममय बनाता है इसलिए जीव ब्रह्म का विवेक करना भी ब्रह्म ही है क्योंकि सच्चरित्रता ज्ञान का स्रोत है इसलिए लक्ष्य का बेधन करने वाला सब का आदर्श होगा । ४१

उत्पन्न एष च भवो हि घृणात्तरेव ।
स्निग्धोऽपि गम्यभवनो विगतो विषादी ।
ऐन्द्रं च कृत्यमशुभं लसितं यथाहि ।
प्रत्यक्षमीशमनृतं सकलं विधातुम् ॥ ४२

भावार्थ—यह जगत् घुणाक्षर की नाईं बन गया है यह जगत् सुन्दर भवनों वाला अर्थात् विविध भावों वाला प्रेम मय प्रतीत होने वाला भी नष्ट सा है और विविध दुःखों वाला है जैसे इन्द्रजाल मलिन और झूठे कार्य का सुन्दर और कला से युक्त बनाने के लिये समर्थ है ऐसे ही यह जगत नाना प्रकार की कल्पना करने में समर्थ है प्रायः भोग योनि की लीला किसी महान् व्यक्ति की प्रेरणा से होती है भोग योनि का प्राणी यदि स्वयं किसी कार्य को करता है तो उस का चैतन्य महान् के हाथ में है यदि उस महान् से हमारा परिचय होता है तो भोग योनि वाले हम महान् हैं इसलिए यह जगत कृत्रिम साधन रूप महान् का अङ्ग नहीं हो सकता है क्योंकि जगत की अनित्यता हमें प्रतिक्षण दिखाई देती है और इसकी जड़ वस्तुओं में चैतन्य भाव का अभाव है जैसे विचारों की तरङ्गें उत्पन्न होती हैं और लय हो जाती है ऐसे ही जगत उस महान् की तरंग है इसलिये उस महान् आत्मा को जानने वाला हो केवल ब्रह्म और सत्य स्वरूप है बाह्य भाव से सुन्दर और सरस कुसुम भी सुगन्ध के बिना निरर्थक है उपयोग रूप चैतन्य के बिना मधुरता नहीं आती है इसलिए शुद्ध चैतन्य के साथ उपयोगी वस्तु भी कभी चैतन्य का साधन बन जाती है इसलिए पवित्रता से जड़ता

में भी आत्मा आ जाती है क्योंकि वह पवित्रता अधिक मानवता का केन्द्र बनती है केन्द्र में प्रायः आकर्षण आता है चाहे वह कितना जड़ हो। ४२

सत्यं जगद् यदि गुणै र्मनुते शुभं वै।
क्षुद्रं क्षणे च परिवर्तनलक्ष्यजन्मा॥
विद्वानतो निगदतीति कथं हि नष्टम्।
तज्जायते भगवति प्रलयंच शाश्वत्॥ ४३

भावार्थ—यदि कोई जगत् को गुणों द्वारा सत्य और शुभ मानता है यह जगत् अधोगति वाला होकर क्षण २ में परिवर्तन करने वाला और नष्ट सा क्यों होता है इस लिए विद्वान् कहता है यह जगत् भगवान् में ही लय होता है ब्रह्म के बिना यह जगत् कुछ भी नहीं है क्योंकि छाया और प्रतिमा उस व्यक्ति से सम्बन्ध रखती हैं जिस की वह है इसलिये ब्रह्म का विलास यह जगत् हमें प्रतीत होता है सत्यता का अन्वेषण और गुणों का परिभ्रमण उस गुणी में होता है क्योंकि गुण गुणी के बिना नहीं रहेंगे यदि गुणों द्वारा परिवर्तन की सुन्दरता जगत् में दिखाई देती है तो उसी सौंदर्य के स्रोत ब्रह्म के बिना इसकी जड़ता और अनित्यता ही है इसलिए भी हम अपनी सौजन्य

भावना के साथ सुन्दर बन कर उस सौंदर्य के स्रोत से सम्पर्क रखें तो हम स्रोत के एक बिन्दु हैं और जगत हमारे लिये नाट्य स्थल के बिना कुछ नहीं है इस लिए ब्रह्म जीव अभेद रूप होने से एक ही अधिष्टाता है और जगत् इन्द्रजाल है नित्य लक्ष्य का परिवर्तन कभी नहीं होता है जब तक जगत् लक्ष्य च्युत है तो वह ब्रह्म की भावना वाले जीव के सामने क्षुद्र होगा क्योंकि पवित्र और नित्यता ब्रह्म रूप के बिना नहीं ठहरती हैं इसे सर्वत्र ब्रह्म का स्वरूप समझ कर ही निर्द्वन्द बन सकते हैं।

द्रष्टा च तद्व्यसनिना विहितं हि दृश्यम् ।
आकाशपुष्पसमविश्रुतनामचित्रम् ॥
शृंगं यथाहि शशकस्य तथैव चैतत् ।
अन्यायभावनिरतं च जगन्न सत्यम् ॥ ४४

भावार्थ—संसार के व्यसनी मनुष्यों द्वारा बनाया हुआ यह दृश्य आकाश के पुष्प के समान नाम वाला जैसे चित्र हो ऐसे यह द्रष्टा और दृश्य हैं। भूमि में जैसे शशक के सींग हैं वैसे संसार भी असत्य है नाना प्रकार के दम्भादि कार्यों से युक्त यह जगत भी

असत्य है जब तक मनुष्य भ्रान्त रूप विपत्ति में विचरण करता है तब तक यह दृश्य और सौन्दर्य है दुःख निवृत्ति के बाद कुछ भी नहीं है केवल मानवता ही शासन करती है क्योंकि इस जगत का द्रष्टा ही यदि भ्रान्त न हो तो सत्यता का कुछ प्रतीक हो सकता है इसलिए जीव के जीवन में यदि विवेक भ्रष्टता है तो सुन्दर भावों का उपयोग और अश्लील भावों का त्याग कैसे हो सकता है। इसलिए उपयोग ब्रह्म का स्वरूप है दुरुपयोग जीव का संसार के संकेतों का सम्यक् व्यवहार होना ही उपयोग का मार्ग है यदि आकाश पुष्पादि कल्पनाओं का उपयोग नहीं कर सकते हैं तो जगत की कल्पना भी कैसे सत्य होगी क्योंकि सर्वत्र तो ब्रह्म के बिना व्यवहार ही नहीं है शास्त्रीय प्रवचनों में भी शशकादि शृंगों के समान जगत की कल्पना है। इसलिए शून्यता का भ्रमण छोड़ कर इस जगत् रूप नाटक को करने वाले ब्रह्म की अन्वेषणा करनी होगी इसमें हम द्रष्टारूप भी नायक हैं यदि दृश्यों का उपयोग हमारे हाथ में है तो हम इस सम्पूर्ण दृश्य के स्वामी हैं फिर यह सब परिवर्तन होने वाला हमारे आधीन होगा और परिवर्तन में जाने वाला अनित्य और जड़ माना जाएगा जीव सदा उपयोगिता की

भूमि में जाकर ब्रह्म हो जायेगा फिर जीव ब्रह्म की एकता में संशय नहीं होगा।

सर्वं प्रपंचजनितं रमणे भ्रमा वै।
सर्गः स्थिति र्लयममी विदुषा न मान्याः ॥
वस्तूनि चित्तरुचिराणि सदा न भूमौ।
ज्ञात्वा निजं गवि शिवं प्रभवेत् स्वचित्ते ॥ ४५

भावार्थ—सब यह प्रपंच पैदा होने वाला ब्रह्म में भ्रम माना जाता है सृष्टि की रचना-पालन-और प्रलय यह सब विद्वान् को नहीं मानने चाहिएं अर्थात् यह कार्य में भ्रम मात्र हैं मन को प्रसन्न करने वाली यह संसार की वस्तुयें नित्य नहीं हैं इसलिए अपने शरीर रूपी मन्दिर में अपने को शिव समझ कर अपने चित्त पर शासन करो अर्थात् इस संसार का विलास अनित्य और असत्य है इस पर प्रभावी बन कर अपनी उपयोगिता सिद्ध करने से कुछ भी प्रतीत नहीं होगा ब्रह्म सत्य है किन्तु उसके कार्यों में विवेक के बिना शून्यता है यदि जीव अपने को कल्याण का स्वरूप समझले तो यह संसार का प्रपंच कल्याण रूप हो जाये क्योंकि जीवन की समस्या अन्तिम शान्ति पर निर्भर है संसार के पदार्थ अशान्त और अस्थिर हैं अपनी

स्थिरता प्राप्त करने के लिये जीव यदि आत्म तत्त्व का अन्वेषण करता है तो स्थिरता का स्रोत अपना केवल आत्मा रूप पदार्थ प्रतीत होता है फिर जीव मानवता को धारण करके ब्रह्मका प्रतीक बन जाता है शनैः शनैः ब्रह्म रूप ही साधारण जनता में हो जाता है जगत की वस्तुओं का ज्ञान रूप व्यापकता जब तक मनुष्य धारण नहीं करता है तब तक ब्रह्म का सम्पर्क दूर है और मनुष्य के सामने विविध रचनादि भ्रम रहते हैं इसलिए ज्ञानी सदा ही विवेक और संयमादि भावना संयुक्त अपने को समझे। ४५

वायोस्तरङ्गजनिताः सलिले विकाराः ।
शुद्धे भवन्ति हि सुबुद्धिमताञ्च दृष्टया ॥
तोयन्तु शुद्धप्रकृति वहति प्रसादात् ।
आवर्णजास्तनुभृतां सुधियां हि दोषाः ॥ ४६

भावार्थ--शुद्ध जल में विद्वानों की दृष्टि से भी वायु की तरंगों के द्वारा पैदा हुए २ विकार होते ही हैं जल तो निर्मल स्वभाव वाला होता है और विमलता और शान्ति के साथ बहता ही है ऐसे व्यसन रूप आवर्णों से पैदा होने वाले दोष देह धारी बुद्धिमानों में भी होते हैं आत्मा तो शुद्ध स्वरूप है उसमें विकारों का होना जीवों

की कल्पना प्रधान है, अन्त में जैसे जल शुद्ध है जल का एक बिन्दु भी विकार रहित है वैसे ही आत्मा के विलास शुद्ध हैं जीव यदि पदार्थों की लोलुपता में न पड़कर तत्त्व का अन्वेषक बनता है तो संसार के सामने जीव के विलास दर्शनीय हैं यदि हम सुन्दर और पवित्र साधनों को पाकर विकारों के साथ मुग्ध हैं तो जीव घृणास्पद बन कर ब्रह्म से पृथक् हो जाता है इसलिये जीव विकारों की दृष्टि को त्याग कर स्वच्छता और सुन्दरता का द्रष्टा बने क्योंकि जीव ही अव्यक्त ब्रह्म का प्रतिनिधि है व्यक्त होने वाला जीव गुणों द्वारा ब्रह्म ही है प्रायः साधनों के प्रभाव में आकर साध्य भी तद्रूप प्रतीत होता है इसलिये सूक्ष्म विवेक की बड़ी ही आवश्यकता है योग्यता में जब विवेक कार्य रत होता है तो शान्ति स्रोत बहने लगता है यदि आवरण से योग्यता का रूप गुप्त हो जाता है तो तथ्य को न जानने से विद्वानों में दोष आ जाते हैं इसलिए ब्रह्म का प्रतिनिधि कभी भी व्यवस्था में स्निग्ध नहीं होता है ४६

आदर्शबिम्बमपि सत्यमिदं हि लोके।
आकाररूपसुगुणा निवसन्ति कृत्ये ॥
बिम्बं च दर्पणगतं ननु नश्वरं तत् ।
निर्द्वन्दपूज्यपुरुषे न सुखं न दुःखम् ॥ ४७

भावार्थ—दर्पण का बिम्ब लोक में सत्य सा प्रतीत होता है संसार के व्यवहार में आकर और रूप के गुण रहते हैं बिम्ब और दर्पण का आकार यह दोनों नाशवान् है ऐसे ही द्वन्द से रहित पवित्र आत्मा में सुख और दुःख नहीं होते हैं इसलिए आकार के विकार तब तक हैं जब तक हम आत्मा का उपयोग नहीं जानते हैं यदि हमारे व्यवहारों में कल्याण करने की भावना है तो हमारे साधन भाग्य वशात् अपवित्रता के साथ २ व्यवहार करते हुए भी पवित्रता की नदी बहाते हैं क्योंकि जीव का सबसे प्रथम कर्तव्य यही है कि व्यवहार की उपयोगिता सीखे और सिखाए। संसार के अनित्य व्यवहार तो हमारे संघर्ष के बोधक हैं और नित्यता के उत्पादक हैं यदि जीव में संघर्ष हो गया तो जीव संसार का शासक और उद्बोधक है इसलिये अनित्यतामें नित्यता लाने वाला जड़ता में चैतन्य लाने वाला जीव ब्रह्म है जब तक जीव बिम्बादि वस्तुओं को साधन जानकर पृथक्ता का अनुभव करता है तब तक विकारों की सृष्टि विस्तृत होगी जब यह सब व्यवहार में सत्यता को प्राप्त करते हैं फिर द्वन्दता का विनाश सा होने लगता है इसलिये ममता ही अज्ञान का मूल कारण है इस ममता से पृथक् उपयोगिता प्रत्येक धर्म में रखना ही ब्रह्म का मार्ग है ४७

चित्तं प्रपंचसहितं जगतां पदार्थैः।
मायां विना चरति नास्ति तदा परार्थी ॥
सर्वं निजं विकलुषो मनुते सचेताः।
तस्याश्च कृत्यविरताय भयं न दोषाः ॥ ४८

भावार्थ—जगत के पदार्थों से चित्त प्रपंच वाला होता है जो दूसरों का हित करने वाला माया के बिना विचरण करता है उसके लिए जगत नहीं है जो पाप से रहित हुआ बुद्धिमान जीव सबको अपनी आत्मा समझता है माया के व्यवहार से उदास हुए २ उस जीव के लिए न कोई भय है न कोई दोष है क्योंकि उसकी आत्मा प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है वह जीव जड़ और चेतन का उपयोग करने वाला ब्रह्म का प्रतिनिधि बन जाता है इसलिए उस पवित्र जीवकी सब को अपेक्षा करनी पड़ती है सत्य रहस्य का ज्ञाता जीव अपनी सब भावनायें विश्व में अपने शुद्ध कर्मों द्वारा विस्तृत करता है उस जीव का बुद्धि बल प्रशस्त माना है जो संसार के व्यवहार में निर्भीक होकर व्यवहार करता है परोपकारी जीव कभी भी माया के चक्र में नहीं आ सकता है इसलिए शुद्धाऽद्वैत जीव ही ब्रह्म माना जायेगा क्योंकि सब ओर ही उसी का प्रभाव माना जाता है उसी के

प्रकाश से सब प्रकाशित और शिक्षित होते हैं वहां मानवता सदा रहती है ४८

स्थूलं तथा विचरते सकलं हि कार्यम्।
विश्वस्य नाम कुरुते द्विगुणं प्रकीर्णम् ॥
तस्माद् ऋते सदसि सूक्ष्मधियें न भीतिः।
मायोपयोगिपुरुषः प्रकटं शिवोऽसौ ॥ ४९

भावार्थ—स्थूल कार्य उस माया से सम्पूर्ण ही कला वाला हो रहा है वह स्थूल कार्य ही विश्व के नाम को विविध रूप से फैलाता है अर्थात् यही स्थूल कार्य ही जीव को लोकेष्णा का पुजारी बनाता है उस माया के विना सूक्ष्म बुद्धि वाले और लोगों के समूह में तत्त्वदर्शी जीव के लिए कोई भय नहीं है माया का शुद्ध उपयोग करने वाला शङ्कर ही है अर्थात् दुरुपयोग ही ब्रह्म और जीव के सम्पर्क में बाधा है अपने को ब्रह्म समझने के लिये दुरुपयोग आवरण है इस लिए शुद्धाऽचरण ही ब्रह्म का स्वरूप है जीव जितना तत्त्व का अन्वेषण करेगा वह उतना ही पवित्रता को प्राप्त करके संसार के लिए विभूति बनेगा। इस लिये सूक्ष्म दर्शन हमें स्थूलता से छुड़ाता नहीं अपितु उसे स्थिर करने के लिये हमारे व्यवहार को दृढ़ करता है

केवल स्थूलता हमें झूठी भावनाओं की ओर और मिथ्या-भिमान की ओर ले जाती है इस लिये सम्पूर्ण वस्तुओं का निरीक्षण हमें आत्म वल से करना होगा जिस में हम बहुत व्यापक हो सकें । ४६

तोये प्रभञ्जनकृता बहवो विकारा : ।
सद्यो भवन्ति सलिलानि सुनिर्मलानि ॥
स्पर्द्धागतिः सुमनसश्च तथैव तीव्रा ॥
शश्वन् मनस्तुविमलं सरलं च दुःखे ॥ ५०

भावार्थ—वायु के द्वारा किये हुए बहुत ही विकार जल में निरन्तर होते हैं किन्तु जल तो सदा ही निर्मल रहता है ऐसे ही व्यसनों से उत्पन्न हुए २ विकारों द्वारा शुद्ध मन की गति भी चपल हो जाती है किन्तु मन तो सदा ही दुख और सुख में भी निर्मल और सरल रहता है है अर्थात् विकारों से मन में आवर्ण आ जाते हैं शुद्ध मन सदा आत्मोत्थान का साधन हो जाता है जीव की गति पदार्थों के साथ परिवर्तित होती रहती है परन्तु जीव का ब्रह्मत्व तटस्थ रहता है संसार की सुन्दर नदी स्रोतों से जीवन कौर कला धारण करने वाला जैसे कमल पृथक् वस्तु है ऐसे ही जीव संसार के भौतिक पदार्थों को जीवन

मान कर भी सूक्ष्मावस्था के साथ २ उपयोग के द्वारा संसारियों को कल्याण के कारण पृथक् ब्रह्म है व्यसनों के कारण दुःख और सुखका अनुभव हमें विचलित सा करदेतः हैं इस लिये व्यसन रहित जीव अचल और विकास वाला होता है इस लिये हमें जीव की पदार्थों से पृथकता तब तक माननी पड़ेगी जब तक हम शान्ति के भिक्षुक हैं शान्ति ही ब्रह्म का स्वरूप है और जीव ब्रह्म की अद्वैत सत्ता है पदार्थों द्वारा सुख-दुःख का उपयोग-दुरुपयोग जानना ही जीव का उत्थान है फिर कोई भी सत्ता जीव को ब्रह्मत्व से भिन्न नहीं कर सकती है और जीव सदा सर्वत्र विजयी रहता है। ५०

कार्याद् गताविह कृतेः पृथगेव वक्ता ।
तृष्णां मृगस्य मरुभूमिगताञ्च हित्वा ॥
रम्यां सुधाश्वरचनासु सतां हि भावैः ।
अद्वैततत्त्वसुमनाः कुरुते स्वरूपम् ॥ ५१

भावार्थ—इस संसार में प्रकृति के कार्य से पृथक् हुआ २ जीव सज्जनों की योग्य मन्त्रणा से योग्य स्थानों के पदार्थों की कलाओं में सुन्दर माया को छोड़ कर अद्वैत भावों में मन लगाने वाला अपने स्वरूप को बना

लेता है जैसे मरुभूमि में प्राप्त हुई २ तृष्णा को छोड़ कर मृग सुख उठा सकता है वैसे ही भूमि के पदार्थों में प्राप्त हुई लिप्सा को त्यागने से जीव इस संसार में ब्रह्म का स्वरूप हो जाता है स्पष्ट रूप से यदि कहें तो ब्रह्म ही इस संसार का निर्माण करने के लिये जीवके रूपमें आता है इस लिये जीव अपनी अवस्था में बड़ी विलक्षणता से वस्तुओं का उपयोग समयानुसार करता हुआ कृत्रिम सुन्दर भावों में न गिरे जीव को तो यात्रा करते हुए अपने कृत्यों द्वारा सुन्दर से सुन्दर और पवित्र से पवित्र स्थलों में गमन करना है और सर्वत्र सफलता प्राप्त करनी है इस लिये जीव स्थूल जगत् से पृथक् होकर ब्रह्म बन जायेगा। और सर्वत्र ही इसके गुणों का उपयोग ही मानवता मानी जायेगी। और ऊंचे सहवास के कारण सुन्दरता का विस्तार मानव बने हुए जीव को भ्रान्त नहीं कर सकेगा यदि रागद्वेष के कारण जीव अद्वैत भावों का आदर नहीं करेगा तो वही प्रम का अभ्यास जीव के लिये कठिन बन्धन बन जायेगा इस लिए जीव सत्य प्रेम का पालन भी अद्वैत भाव से करे योग्यता को देख कर जिस से जीव अपने को नहीं भूल सकेगा और सब के लिए आदर्श होगा। ५१

शृंगेण कुञ्जरवरहः शशकस्य शीघ्रम् ।
कोपेन कामुकमति निंहितः प्रसन्नम् ॥
तृप्ति मृगस्य हि मरीचिकया भवेत् सा ।
भूमौ तदा सुखमयं जगदस्तु धीभिः ॥ ५२

भावार्थ—क्रोध के कारण शशक के सींग से मतवाला हाथी सरलता पूर्वक मारा गया हो यह किंवदन्ती जैसे असत्य प्रतीत होती है वैसे ही मृगमरीचिका से इस संसार में लोगों को तृप्ति है और सुख स्वरूप जगत् भी विविध प्रकार की कल्पनाओं से वैसे ही प्रतीत होता है अर्थात् इन किंवदन्तियों की नाईं यह जगत् भी असत्य है संसार में महान् से महान् प्राणी न्यून से न्यून प्राणी को नहीं मार सकता है किन्तु सूक्ष्म भावोंके साथ २ इस मर्यादाका अतिक्रमण सम्भव भी है मर्यादा का उल्लंघन जैसे हमें असत्य भावना की ओर ले जाता है वैसे ही जीव की पदार्थों के साथ २ व्यर्थ कल्पना हमें मोक्ष पथ से च्युत करेगी इस लिये प्रथम जीव का कर्तव्य उस ब्रह्म से सम्पर्क करना ही है अन्यथा जीव की विचार धारा में स्थूलता को सुखमय मानकर तमस्कांड का आवर्ण फैलाती है इस लिए असत्य भावनाओं में और असत्य सूचनाओं में ध्यान न देता हुआ

जीव मोक्ष पथ की ओर चले इसी से जीव अपनी शक्तियों का उपयोग कर के ब्रह्म का स्वरूप बनता है और बुद्धियों की कल्पनायें सत्य होती हैं । ५२

दृश्यं विमुग्धमनुजं हि प्रमुद् विधौ स्यात् ।
सूक्ष्मप्रभावरहितं सकलं प्रफुल्लम् ॥
सर्वं गतौ हि दुरितं तु भवेच्च नष्टम् ।
सर्वत्र सौख्यचरिता मनुजा भवेयुः ॥ ५३

भावार्थ—सूक्ष्म तत्त्वों से रहित स्थूल कलाओं से युक्त और मनुष्यों को मोहित करने वाला यह सुन्दर दृश्य संसार में प्रसन्न करने वाला क्यों न हो किन्तु यदि जगत् सत्य है तो संसार में सारे दुःख नष्ट हो जायें और मनुष्य सुखी जीवन वाले सर्वत्र प्रतीत हों परन्तु ऐसा नहीं होता है इसलिए माना जाता है जगत् सत्य नहीं है जीव जगत् के स्थूल सौंदर्य को न देखता हुआ सूक्ष्म तत्त्वों का अनुकरण करे क्योंकि यह संसार स्वर्ण घट की नाईं निर्मित है जिसमें हलाहल विष भरा हुआ है इसलिए जीव संसार रूपी कारागार के बन्धन में आकर पाप पुन्यों से उपार्जित सुख दुःख रूपी शृंखलाओं को तोड़ दे इसी से जीव सदा ही प्रसन्न और शान्त हो जायेगा यदि हमें

सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा संसार का वातावरण सुन्दर भावों में ओत प्रोत प्रतीत नहीं होता है तो हमें आत्मा के विकास की ओर पहुंचने के लिए सबको छोड़ना होगा अर्थात् लक्ष्य के बिना कृत्रिम प्रेम में नहीं जाना होगा इसी से जीव ब्रह्म का प्रतीक बन जाएगा और सर्वत्र ही इस जीव के निमित्त आनन्द ही आनन्द व्याप्त होगा सदा के लिए साधारण जीव उस विशेष जीव का ही अनुकरण करेगा फिर ब्रह्म रूपी जीव के बिना दूसरी वस्तु नहीं प्रतीत होगी। ५३

दृष्ट्वा जलेऽग्निकृतिबिम्बगतिं विचेताः।
दीर्घं न चिन्तयति तां भ्रम एव याति॥
स्निग्धं यथा भगवतो हि जगत्सुचित्रम्।
ब्रह्मात्मदर्शनधृते सकलं च मोघम्॥ ५४

भावार्थ—जल में अग्नि के आकार का प्रति बिम्ब देखकर मूर्ख पुरुष सूक्ष्म विचारों से उसे नहीं सोचता है स्थूल भावना से जल में अग्नि मान बैठता है और भ्रान्त अवस्था को प्राप्त करता है जैसे महान् ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान् का सुन्दर चित्र सत्य नहीं होता है वैसे स्थूल भावनाओं से बना हुआ जगत भी सत्य नहीं है ब्रह्म रूप

आत्मा के दर्शन करने वाले पुरुषके लिए यह सारा जगत् भ्रम मात्र है मूर्ख जीव इस भ्रममें पतित हो सकते हैं जीव प्रायः चित्रों की घटनाओं से अपने विवेक द्वारा अपने अन्दर विविध घटनाओं की कल्पना करता है किन्तु चित्र जीव से पृथक् होते हुए भी सूक्ष्म भावों के साथ यदि मिलते हैं तो चित्रों का आवश्यक होना साधारण जीव के लिये तब तक माना जाएगा जब तक जीव बालकपन की व्यर्थ कल्पनाओं को नहीं छोड़ता है इसलिए जीव की शक्तियां जब तक तिरोहित हैं तब तक यह जगतकी वस्तुयें साधन रूप किंचित् काल के लिये सौंदर्य का आगार बन सकेंगी जीव सत्यता को प्राप्त करके परम प्रसन्नता वाला बन कर अपने बिम्ब को व्यर्थ समझता है साधन और साध्य स्वयं बन जाता है जगत् से उदास हो जाता है इसलिए जीव ब्रह्म का अंश और स्वरूप है। ५४

स्वप्नं यथा हि वितथं दधते सदैन्द्रम् ।
एको हि देवगमनः कथितो विचित्रैः ॥
ज्ञानाय लोकमतये जगति प्रपंचः ।
आत्मप्रकाशदधते जगदेव चेशः ॥ ५५

भावार्थ—जैसे इन्द्रजाल वाला स्वप्न असत्यता को प्रकट करता है वैसे एक ही ब्रह्म में गमन करने वाला

जीव अपने दिव्य गुणों से संसार में कहा जाता है लोगों के ज्ञान के लिए और शुद्ध व्यवहार के लिए जगत् में ब्रह्म रूप जीव के बिना यह प्रपंच है। आत्म ज्योति को धारण करने वाले जीव के लिए जगत् ही ब्रह्म है क्योंकि योग्य जीवका उपयोग ही तो सबके लिए अनुकरणीय ज्ञान होगा संसार के पदार्थ यदि दिव्य गुणों को धारण करते हैं और विचित्र भावनाओं से ओतप्रोत भी हैं तो भी जीव को ब्रह्म बनाने के लिए यह सारे विस्तार क्षणिक हैं क्योंकि जीव परमार्थ गति में इन से पृथक् और एक ही रह जाता है जैसे संस्कारों के अनुसार स्वप्न का विस्तार असत्य माना जाता है वैसे जीव की कल्पनायें- केवल दिव्य भावनायें उस महान् शक्ति की द्योतक होती हैं इसलिए ब्रह्म के साथ सम्पर्क रखने वाला जीव संसार के गुणों को न देखता हुआ शुद्ध ब्रह्म को केवल देखता है जीव की शक्तियां सम्पूर्ण विश्व में विस्तृत होती हुई भी ब्रह्म के लक्ष्य को बेध सकें और ब्रह्म ही बन जायें इसलिये इस जगत् को भिन्न २ रूप से प्रतीक बनाया है क्योंकि कर्मों के बन्धन ही जीव के बन्धन हैं सुख दुःख की भावना के बिना जीव अभिनय और अपना कर्तव्य कर सकें इसलिए यह जगत की कल्पना जीव की परीक्षा है जहां जीव को सर्वत्र ब्रह्म देखना होगा। ५५

गन्धर्वनाम्निगरे रुचिराः पदार्थाः ।
सौंदर्ययुक्तगमना मनुजा विचित्राः ॥
बुद्धया यदैव निखिलाः कथिता विनष्टाः ।
भावैस्तदैव जगतामपि सत्यता वै ॥ ५६

भावार्थ—गन्धर्व नाम वाले नगर में सुन्दर प्रतीत होते हैं और सुन्दरता को धारण करने वाले विविधप्रतिभा वाले लोग दिखाई देते हैं जब विवेक द्वारा यह सब परीक्षित होते हैं तब यह विचारों द्वारा नष्ट से दिखाई देते हैं ऐसे ही जगत की सत्यता भी व्यर्थ प्रतीत होती है अर्थात् गन्धर्व का इन्द्रजाल जैसे इन्द्रियों को मुग्ध कर देता है और असत्यता को सत्य बना देता है वैसे ही संसार की लीला स्थूलता के साथ २ जीवन देती हुई प्रतीत होती है किन्तु सूक्ष्म महत्त्व से यदि विचार किया जाये तो जगत् प्रपंच सा प्रतीत होगा इसलिए जीव यदि इन्द्रियों के वशीभूत होकर यदि कुछ सोचता है तो उसे आत्मा का अमर भान नहीं होगा और इन्द्रियों की भ्रान्तियां उस की प्रत्येक शक्ति को भ्रान्त बना देती हैं इसलिए जीव गन्धर्व के इन्द्रजाल से बचकर ब्रह्म रूपी लक्ष्य को बेधन करे इसी से गन्धर्व के प्रपंच विस्तार वाले होते हुए भी जीव को ब्रह्मत्व से पृथक् न कर सकेंगे अपितु प्रपंचों की शोभा

जीव के साधन बनने में होगी और जीव को केन्द्र बना कर यह प्रपंच गति कर सकेंगे जीव सदा ही ब्रह्म रहेगा ॥ ५६ ॥

बालो यथा तमसि भीतियुतोऽज्ञकर्मा: ।
स्वैरं कृतं हि विदधाति मनोऽनुकूल: ॥
चांचल्यभावप्रणयेन गतेन्द्रियोऽसौ ।
नानात्वभेदविरतो न च वेत्ति तत्त्वम् ॥ ५७

भावार्थ—मूर्खता के कार्यों वाला बालक जैसे अन्धेरे में भय वाला हो जाता है और मन के अनुसार स्वच्छ-न्दता पूर्वक कुछ विपरीत कार्य कर डालता है ऐसे चपल भाव के प्रेम से इन्द्रियों की शक्तियों को न जानने वाला जीव विविध भेदों के कारण उदास हुआ २ तत्त्वको नहीं जान सकता है। इसलिए जीव दृढ़ संस्कारों का उपार्जन करके ब्रह्म रूपी तत्त्व को जान सकता है संसार में अपनी असीम शक्तियों का उपयोग न जान कर जीव सम्प्रदाय भेदों की भ्रान्ति में प्रायः उलझ जाता है अपनी शक्तियों को विपरीत भाव वाला जान कर भी सुमार्ग पर नहीं आ सकता है क्योंकि संस्कारों का प्रेम जीव को पामर बना देता है इसलिए संस्कारों

का अभ्यास पवित्रता पूर्वक करना होगा अन्यथा जीव की मन्द शक्तियां उसे अनात्म की ओर ले जायेंगी इस लिये जीव सदैव भेदों के प्रपंच में तत्त्व जिज्ञासा की भावनाको करे इसीसे जीव ब्रह्मका स्वरूप बनने के लिये योग्य बनेगा और शान्तिको प्राप्त करके जगत् के पदार्थों पर शासन करेगा पूर्वजों और सच्छास्त्रों की उपेक्षा करके जीव जिज्ञासाके भावसे दूर हो जाता है और अपनी उछृङ्खल मति को सत्य मान कर धोके में आ जाता है फिर आत्म-विश्वास न होने से कुछ आत्मोत्थान के लिए नहीं कर सकता है अपितु उपार्जित सम्पत्ति को भी नष्ट कर बैठता है इसलिए जीव तत्त्व का अन्वेषण सदा ही करे अन्यथा उसका अभिनय जड़ता में मिल जायेगा ॥ ५७

रम्यं जगद्धिमनसा रचितं ध्रुवं तत् ।
कस्मिन् कदा कथमिदं खलु केन जातम् ॥
प्रश्नाः सदा च बहवः प्रकटी भवन्ती—
त्यादीन् विहाय विषयान् भगवान् निधेयः ॥ ५८

भावार्थ—यह जगत् मन की कल्पना से निश्चय कर के बनाया गया है किस देश में कब किस लिए किस से यह प्रपञ्च पैदा हुआ है ऐसे अनेक प्रकार के प्रश्न पैदा

होते हैं किन्तु ऐसे वाद-विवादों को छोड़ कर जीव ईश्वर का केवल स्मरण करे क्योंकि मनकी तरंगें अनन्त और गम्भीर हैं जीव प्रायः इन तरंगों के मोह में वह जाता है और सम्पूर्णता से ही नष्ट सा हो जाता है इसलिए जीव सदा निर्माण की कलाओं का विचार करे और उसी सौंदर्य की भावना में अपने को तन्मय कर दे इसके अनन्तर जीव इन कलाओं का निर्माण करता हुआ पदार्थों की विशेषता का स्वरूप वन जायेगा। जीव ब्रह्म का प्रतिविम्ब है वह अपने विचारों से अपनी समस्यायें सम्पूर्ण ठीक करेगा. विविध प्रकार के तर्क वितर्क के भावों में समय न विता कर जीव उपयोग के भाव को सीखने की इच्छा सदा करता रहे क्योंकि अनन्त गुणों का सम्यक् विन्यास ही जीव का अन्तिम धर्म है इसके लिए अधिक अभ्यास अनिवार्य है ॥५८

अन्धं तमश्च निलये ह्यधिगम्य जीवः ॥
सर्पभ्रमेण सततं विनयन् हि मालाम् ॥
हास्यास्पदं व्रजति ना जगतो ह्यसत्यै ।
भावै निंजात्म सुरति भुवने च सत्यः ॥ ५९

भावार्थ—घर में जीव गाढ़ अन्धकार को पाकर सर्प के भ्रम से सुगन्धित माला को दूर करता हुआ जगत् के अनित्य और असत्य कारणों से हंसी का स्थान बनता है अपनी आत्मा की प्रवृत्ति में मग्न रहने वाला संसार के कृत्यों से विकारों को न प्राप्त होने वाला संसार में सत्यता को प्राप्त होता है जीव सदा ही भ्रान्ति के जाल में गिर कर विविध प्रकार के भेदों को और कल्पनाओं को स्वयं बना लेता है इस लिए जीव अपने संस्कारों के बन्धनों से छूटने के लिए बाह्य और आन्तरिक अज्ञान को नष्ट करे सदा ही ज्योति का अनुकरण जीव का धर्म है समय को दिन रात को तिथि वर्ष तथा मास को अपने से अधिक महत्त्व न दे क्योंकि इसका निर्माण करने वाला शुद्ध जीव ही है इस तरह तटस्थ रहने वाला जीव ब्रह्म का प्रतीक बन जाता है अन्यथा पामर लोगों का पात्र बन कर बुद्धिमानों के लिए जीव त्याज्य बन जायेगा अपने को व्यसन रूपी अन्धकारके मार्ग से बचा सकने वाला जीव अपना सत्य रूप प्रकट कर सकेगा और संसार के भ्रान्त मार्ग का सौंदर्य उस ब्रह्म के प्रतीक जीव को मोहित करने में असमर्थ होगा क्योंकि सौंदर्य की कृत्रिमता और तथ्य भाव दोनों तो उस समर्थ जीव के आश्रित होते हैं इस लिए विवेकता अनिवार्य होगी ॥ ५६

बद्रीफलेन शशिना भ्रम एव सत्यम् ।
मुक्ताकृतेश्च सलिलस्य मरौधंरायाम् ।
रज्वा च गाढतिमिरे खलु सर्पचेष्टा ।
आवर्णभावसहितस्य तथैव माया ॥ ६०

भावार्थ—चन्द्र की चांदनी से जैसे बद्रीफल के द्वारा मोतियों का भ्रम होता है मरु भूमि में जैसे जल का भ्रम होता है रस्सी के द्वारा जैसे घने अन्धेरे में सर्प की चेष्टा का भ्रम होता है वैसे ही नाना प्रकार के व्यसन रूप आवर्ण से युक्त पुरुष की माया का भ्रम होता है निर्व्यसनी और कर्तव्यनिष्ठ पुरुष तो माया के बिना विचरण करता है अर्थात् केवल ब्रह्म के बिना और सब भ्रम है संसार के पदार्थों की रचना इन्द्र जाल से सम्बन्ध रखती है इसलिए आत्म दर्शन के बिना वा आत्म विवेक के बिना इन्द्रजाल से निकलने का मार्ग जीव को नहीं मिलता है इसलिए जीव सत्यता के अन्वेषण में सत्य नियमों के पालन में अभ्यास रूप परिश्रम-करे अभ्यस्त जीव अपनी नियमित दिनचर्या के बिना अकर्मन्य नहीं हो सकता है इसलिए सर्वत्र व्यवहार करता हुआ जीव पदार्थों में भी अपनी ज्योति का प्रकाश करता है व्यसनी-अभ्यास से रहित जीव विविध भ्रान्तियों से

अपनी दिनचर्या को भ्रान्त करता है नियमित जीव ही जगत का शासक और अधिष्ठाता बनता है। अन्यथा नाना प्रकार के दृश्य जीव को विविध लक्ष्यों में घुमाते हैं जिस से जीव तटस्थ नहीं हो सकेगा और अपनी दिनचर्या को विवेकता से न देख सकेगा। ६०

भेदैः कथां च कलयन् सुगतिं न याति।
द्वैतं प्रगृह्य खलसज्जनकर्मणाऽयम्॥
अद्वैततन्मयमना अखिले ब्रह्माण्डे।
ना राजते सुखमयस्तपनो हि पूज्यः॥ ६१

भावार्थ—भेदों के द्वारा जीव विविध कथाओं को करता हुआ सत्य गति को प्राप्त नहीं करता है यह जीव खल और सज्जन के कर्मों के द्वारा द्वैत भाव को स्वीकार करके मोक्ष को नहीं प्राप्त करता है किन्तु सम्पूर्ण विश्व में अद्वैत भाव में मग्न रहने वाला सुखरूप और माननीय बनकर सूर्य की नाईं जीव शोभित होता है अर्थात् परोपकार करने वाला और द्वन्द भावों से रहित जीव ब्रह्म हो जाता है संसार के परिवर्तन विविध भावों द्वारा अहर्निश होते रहते हैं यदि जीव अपने लक्ष्य के बेधन में लगा हुआ है तो जीवके विचार और संस्कार एक रहते हैं व्यसनों के

कारण और द्वैत भावनाओं की संगति द्वारा जीव तटस्थ नहीं रह सकता है और अपने शुद्ध संस्कारों को भ्रान्त कर देता हैं इसलिए प्रभावी-तेजस्वी-मर्यादा का पालक जीव ब्रह्म बन सकता है। व्यवहार के सौंदर्य को स्थाई रखना अलौकिक कार्य है इसलिये प्राणी मात्र का हितैषी बन कर हमें आत्मोत्थान करना है उच्चाऽभिलाषा ही आत्मविश्वास और सुख की जननी है इसलिये जीव सदा ही सर्वत्र सम्पर्क करके अपना सरल मार्ग बनाये जो प्राणियों के लिये उदाहरण बन सके और सर्वसाधारण के लिये प्रशंसनीय हो ६१

शिष्यो गुरुः सुवचसां जगति प्रचारम्।
कर्तुं प्रथेयमिह हि प्रसभं वरेण्या॥
सत्ता कृता जनहिताय न सत्यमेतत्।
ऐन्द्रीधृता हि रचना ननु छद्मगेहा॥ ६२

भावार्थ—शिष्य और गुरुः इत्यादि इन पवित्र शब्दों के प्रचार को करने के लिए संसार में सुन्दर प्रथा सी बनाई गई है अर्थात् लोगों के हित के लिए यह मर्यादा बनाई गई है कपट के भावों वाली यह इन्द्रजाल सी रचना है किन्तु यह सत्य नहीं है कृत्रिमता इसकी जननी है

यदि संसार की रचना का विस्तार सूक्ष्म भावों से रहित है तो असत्य सा प्रतीत होगा आत्म विवेक में शून्य कल्पना नहीं होती है क्योंकि वहां उच्चाऽभिलाषा का और मर्यादा का निर्माण होता है इसी तरह गुरु शिष्य के सम्बन्ध-उपदेश और चरित्र की व्यवस्थायें यह सब तब तक शोभित होती हैं जब तक ब्रह्म का स्वरूप जीव को प्रतीत नहीं हुआ है इसी लिये जीव सब ओर से नियन्ता बनने के लिये प्रथाओं का निर्माण करता है पराधीन होकर जीव को रहना रुचिकर नहीं है जीव सदैव सत्य और ब्रह्म है जगत की शून्य प्रथा असत्य होगी कपट से रहित निर्माण जीव का होगा क्योंकि जीव हितैषी बन कर अभिनय कर सकता है। ६२

भूमौ च वस्तु सकलं न विभाति सत्यम् ।
व्याजाऽन्वितं खलु जगद् व्यसनैं र्विचित्रम् ॥
चित्रे यथाऽनृतकृतं च विमूढ़भावाः ।
सत्यं विदन्ति तदसत्यमिदं विदन्तः ॥ ६३

भावार्थ—व्यसनों के द्वारा जैसे मूढ मनुष्य चित्र में बनाये हुए कपट वाले इस जगत को विचित्र और सत्य समझते हैं किन्तु वह मूर्ख चित्र की अनित्यता को जानते

हुए भी सत्यता को नहीं जानते हैं ऐसे ही संसार में सम्पूर्ण सौंदर्य वाली वस्तुयें बाह्य स्थूलता के द्वारा सत्य प्रतीत होती हुई भी असत्य होती हैं क्योंकि जीव चित्र व दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को असत्य समझता है जीव परम्परा से चैतन्य शक्तियों को धारण करके कपट के व्यवहारों से पृथक् होकर रहता है यदि अज्ञान के मार्ग को जीव न पहिचाने तो जगत रूपी विपत्ति को व ललित जगत् सम्भार को सत्य मान ले किन्तु जीव महत्त्वाकांक्षा से कभी भी पृथक् नहीं हुआ है इसीलिए जीव उच्चाऽभिलाषा के द्वारा पूज्य और ब्रह्म का स्वरूप है सदा ही प्रवाह रूप से अनादि है जब जीव कृत्रिमता और स्थूलता को सत्यता का रूप देता है तो जीव को वाह्य मति वालों के लिये बड़ा परिश्रम और तप का उपार्जन करना पड़ता है परमार्थतः वह जीव सदा सूक्ष्मावस्था में रहता हुआ भी समयानुसार स्थूल-सूक्ष्म बनता है वह ब्रह्म रूप जीव होता है । ६३ ।

स्वप्नं च जागृतिसुषुप्तिदशासुकाले ।
उत्पत्तिरन्तकृतिर्लयपालनं तत् ॥
भावत्रयं स्वसमये भुवि भाति सौम्यैः ।
चित्ते विनश्यति जगत् खलु नास्ति सर्वम् ॥ ६४

भावार्थ—स्वप्न-जागृति-सुषुप्ति-यह तीनों अवस्थायें शुभ समय में शान्त भावों के साथ २ उन्नति करने वाली होती हैं व शोभित होती हैं उत्पत्ति-पालन और संहार यह तीन भाव शान्त पुरुषों के द्वारा शोभा प्राप्त करते हैं अर्थात् शान्त मनुष्य अवस्था के अनुसार व तीन गुणों के अनुसार अपने रूपों के व्यवहारों को बदलता हुआ शोभित होता है संसार के प्रत्येक भाव उसी पवित्र जीव के लिये लाभ देने वाले होते हैं क्योंकि चित्त के नष्ट होने पर यह सम्पूर्ण जगत् नहीं होता है वासना ही जीव की सम्पूर्ण पाप-पुण्यों की साक्षी होती है इसलिए जीव सदा ही तीनों कालों में और तीनों अवस्थाओं में वासना को त्याग कर लोक निर्माण के लिए व जगत की स्थूलता का दृश्य देखने के लिए तैयार रहे क्योंकि ब्रह्म ही अवसर के अनुसार गुणों से साम्यता करता हुआ सर्वत्र व्यापक होता है जीव भी उसका प्रतिनिधि बन कर वैसा ही आचरण करे इसी से जीव ब्रह्म का स्वरूप बन कर ब्रह्माण्ड में केवल आप ही व्यापक होगा और सब वस्तुयें जीव के इशारे से चलेंगी। ६४

सत्यस्य भावमपरिग्रहकृत्यहिंसाम् ।
गोब्रह्मचर्यमपि मानवचेतसा ना ॥

यत्नेन रक्षणमति नियमै हि कुर्यात् ।
ज्ञानाय पात्रमपि च स्ववपु विदध्यात् ॥ ६५

भावार्थ—सत्य के भाव को विरक्ति के व्यवहारों को अहिंसा धर्म को और इन्द्रियों के ब्रह्मचर्य को मानवता के अनुसार जीव यत्न के द्वारा पालन करे सदा ही रक्षा के उपायों को खोजता हुआ नियमों के साथ २ अपने शरीर को ज्ञान के लिये योग्य बनाये । जीव इस संसार में गुणों की विषमता करके घृणा का अपने को पात्र बना लेता है अपने सत्य स्वरूप को जान कर विशाल संसार में अपने स्थान को बनाने का केवल परिश्रम करे इसलिए जीव इस जन्म जन्मान्तरों की कटुता को मिटाने के लिए और मधुरता को प्राप्त करने के लिए सत्याचरणों की मर्यादा का पालन करे क्योंकि मर्यादा से मानवता का विकास होता है विकास से विश्व का सौंदर्य बढ़ता है सुन्दर व्यवहारों से जीव ब्रह्म बन जाता है जीव रूपी ब्रह्म का सर्वत्र आधिपत्य होने से यह प्रपंच कुछ भी नहीं प्रतीत होता है जीव अपने प्रभाव से सर्वत्र व्यापक हो जाता है और सब प्राणी उस विशिष्ट जीव को केन्द्र बना कर गति कर सकते हैं । ६५

ईशं प्रकाशकममुष्य भुवो विजानन् ।
ब्रह्मात्मयो र्न गणयन्नुभयोश्च भेदम् ॥
चैतन्यतां हि कलयन् जगतां हि सत्यम् ।
ज्ञात्वा प्रभुं ननु भजस्व शिवं प्रसन्नम् ॥ ६६

भावार्थ—हे जीव इस संसार के प्रकाश करने वाले समर्थ भाव को जानता हुआ ब्रह्म और जीव इन दोनों के भावों में भेद न करता हुआ अर्थात् इनकी एकता और पवित्रता को स्वीकार करता हुआ सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों की चेतनता को मानता हुआ अर्थात् सब में अपने को देखता हुआ उस कल्याण स्वरूप स्वामी को जान कर पवित्र और प्रसन्न भाव को स्मरण कर । क्योंकि ब्रह्म के बिना कुछ भी नहीं है जीव सदा ही ज्ञानवान्-बलवान् और व्यवहार को जानने वाला है किन्तु कुछ आवर्णों के कारण अपनी सत्ता को भूल जाता है इसलिए सम्पूर्ण सामर्थ्य के निकेतन उस ब्रह्म का सहवास अनिवार्य है इसीसे ही सौम्य बन कर जगत के कण २ में शान्ति का दाता जीव बन जायेगा सदा कल्याण कारी भाव समय पर होते हैं ब्रह्म के सहवास के बिना सात्विक भाव तामस बन जायेंगे । ब्रह्म के सहवास से तामस सात्विक होते हैं इसलिये पवित्र बुद्धि का होना आवश्यक है व्यवस्था को

समझने वाला जीव स्त्री-पुरुष-बालक-वृद्ध जीवोंमें एकताको रखेगा राक्षस-देव-पिशाचादियों में भी साम्यताको दिखाएगा इसलिए अपने स्वरूपस्थ जीव की शक्ति अपरिमित होगी यदि प्रकाश और प्रकाशक का भेद न करें व दोनों की साम्यता जान लें तो जीव चारों ओर प्रसन्नता और शान्ति देखेगा इसलिए जीव ब्रह्म है। ६६

ऐक्यं द्वयोश्च परमात्मनि धारयन् वै ।
शीघ्रं हि निर्भयपदं भुवि गच्छ मान्यः ।।
ब्रह्मस्वरूपगुणिनं च निजं विदंस्त्वम् ।
निर्द्वन्दभावनिरतः खलु विद्धि तत्त्वम् ।। ६७

भावार्थ—हे जीव निश्चय से आत्मा और इन्द्रियों के भावोंकी ब्रह्म और उसके कार्य विस्तार की एकता को परमात्मा में धारण करता हुआ निर्भय पद को तुम प्राप्त करो संसार में आदरणीय बन कर. गुणों वाले ब्रह्म स्वरूप को अपना स्वरूप मानता हुआ निर्द्वन्द भाव से युक्त होकर तुम तत्त्व की सूक्ष्मता को पहिचानो यदि तुम राजस-तामस और सात्विक गुणों द्वारा भी संसार के कण कण में व्याप्त हो सकोगे तो स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशित होकर विश्व के चराचर प्राणियों में तुम निर्भय

होकर मिल जावोगे तुम सब के माननीय हो, सबमें तुम्हारा आधिपत्य है इसलिये सुख-दुःख-पाप-पुन्य की प्रवंचना में न गिर कर जड़ता को छोड़ दो और चेतन व्यवहारों का पालन करो तुम ही कल्याणकारी शिव हो उसी का ही भजन करो आत्मा में ही मिल जावो क्योंकि योग्यता को योग्य नहीं छोड़ते हैं इसीसे ब्रह्म और जीव की एकता प्रकट होगी केवल तुम सूक्ष्मदर्शी बन जावो और प्राणियों का हित सोचो। ६७

द्रव्याणि भूमिजनितानि रुचा गृहीतुम्।
योग्यानि भावगतिभि र्ग्रहणस्य कर्ता॥
भेदद्वयं त्यजनयं विचरेच्च जीवः।
आकाशधीः घटपटेषु यथा ह्यसत्या॥ ६८

भावार्थ—रुचि के साथ २ भूमि से पैदा होने वाले द्रव्य ग्रहण करने के योग्य हैं विविध भावों के द्वारा यह जीव पदार्थों को ग्रहण करने वाला है। ऐसे दोनों भेदों की और भावों को छोड़ता हुआ जीव संसार में विचरण करे। जैसे घट और पट में आकाशकी बुद्धि असत्य है अर्थात् जैसे घट पट में आकाश नहीं होता है ऐसे ही यह संसार के पदार्थ और संसार के

द्रव्यों का स्वामी यह दोनों भेद असत्य हैं जीव विशालता को छोड़ कर संकीर्ण विचारों में विविध भेदों के द्वारा विवेक भ्रष्ट होने से विविध भावों में विभक्त हो जाता है संसार के विभक्त भावों में यदि जीव जन्मान्तरों के संस्कारों द्वारा अपने को अविभक्त समझे तो ब्रह्म का स्वरूप बन जायेगा अन्यथा भ्रान्त अवस्था के कारण पशुता को और जड़ता को जीव प्राप्त करेगा अविभक्त भावों में रहता हुआ जीव लोक कल्याण के लिये अपने को विभक्त समझे क्योंकि लोक व्यवहार जीव की पवित्रता से पवित्र समझे जायेंगे व्यक्ति जैसे समष्टि से सम्बन्ध रखता है ऐसे जीव ब्रह्म की उपासना का स्वरूप है इस लिये जीव को व्यवहार के अनुसार परिवर्तन करना पड़ेगा यह जीव सर्व समय ब्रह्म है। ६८

चित्रे यथाहि जगतां रुचिराः पदार्थाः।
सत्यं भवन्ति सततं विगताश्च नष्टाः॥
भ्रान्तिकृताश्च कृतिना हि विहाय जन्तुः।
एवं केवलं ननु भजेत गतिः परस्मै। ६९।

जैसे जगत् के सुन्दर पदार्थ चित्र में सत्य प्रतीत होते हैं तत्त्व से रहित हुए २ नष्ट हुए २ कृत्रिम भावों के साथ २ परिवर्तन करते हैं ऐसे जीव भी कृत्रिम भावों को धारण

कर परिवर्तन करते हैं नष्ट होते हुए भी सत्य प्रतीत होते हैं इस लिये जीव-चतुर मनुष्य से बनाई हुई भ्रान्त अवस्था को अर्थात् कृत्रिमता को छोड़ कर प्राणियों का आश्रय बन कर-दूसरों का हितैषी होकर केवल ब्रह्म को प्राप्त करे। जीव विविध प्रकार के चित्रों को और सूक्ष्म भावों से रहित भावों को प्रतिक्षण देखता हुआ हतोत्साह होकर भी उस सत्यता का अन्वेषण और स्मरण नहीं करता है जिस ने इस सम्पूर्ण सौंदर्य को हमारे लिये दिया है इस लिये धूर्त संस्कारों के द्वारा जीव साधन बनाया जाता है जीव तो सदा ही साध्य रहता है यदि उस में ईश्वरीय शक्ति ओत प्रोत रहती है लोक हित के लिये परिश्रम करने वाला जीव ब्रह्म ही होता है उस के अवयव और व्यवहार कामुक भावों से रहित होने के कारण उसी ब्रह्म के साधन होते हैं सूक्ष्म भावों के साथ विचारने पर ही हमें भ्रान्त अवस्था प्रतीत हो जाती है फिर ईश्वरीय स्मरण हमें ईश्वर बना कर सब का हित करेगा। ६९

न ज्ञायतेच्च मनसा प्रकृतौ सदा यत् ।
द्वेषेण रागगतिभिश्च विना महात्मा ॥
ब्रह्मात्मरूपनिपुणो भजते पदंतत् ।
यद् ब्रह्म वेत्ति गमनं मनसश्च भावम् ॥ ७०

भावार्थ—जो ब्रह्म मन की गति को भावों को और चेष्टाओं को जानता है जो ब्रह्म संसार की भ्रान्तियों में मन से नहीं जाना जाता है राग और द्वेष के बिना ही ब्रह्म और आत्म तत्त्वों की एकता में ध्यान करने वाला महात्मा ब्रह्म पद को जान सकता है अर्थात् प्रसन्नता ही ब्रह्म है जीव प्रकृति के विकारोंमें विकृत होकर नानाप्रकारके विषयों की और राग द्वेष की सृष्टि करता है। अनन्त विषयों का सहवास जीव को कुसंस्कारों के अभ्यास से विचलित कर देता है इसलिए जीव ब्रह्म के सहवास को रुचिकर नहीं समझता है यदि जीव के सामने राग द्वेष का सम्बन्ध नहीं है और अविरत्न व्यवहारों का प्रवाह चलता रहता है तो जीव के व्यवहार ही उसे ज्योतिर्मय कर देंगे इस लिए जीव की सृष्टि ब्रह्म ही होगी क्योंकि वहां कटुता का अभाव रहता है और माधुर्य का वातावर्ण सब प्राणियों का हितैषी सा बन जाता है क्योंकि मर्यादा मधुरता से ही उत्पन्न होती है राग द्वेष को अपनाने वाला महात्मा कुटिल बन जाता है यदि वह तपस्वी-विद्वान् भी हो इस लिये जीव ब्रह्म का अनुकरण करने से ब्रह्म की गति को प्राप्त करता है। ७०

चेतो गतिं हि सकलां लभते सुखं यत् ।
तद् ब्रह्म पश्यसुमना नहि याचते यत् ॥
लोको हि पूजयति यत् स्वहिताय भूमौ ।
भिन्नं गतौ न हि सदा ननु चात्मनस्तत् ॥ ७१

भावार्थ—जो ब्रह्म चित्त के बुरे और अच्छे भावों को नित्य सुविधा पूर्वक जानता है लोग जिसे अपने हित के लिए पूजते हैं और अपने कल्याण के लिए नाना प्रकार के पदार्थ जिस ब्रह्म से मांगते हैं जो ब्रह्म किसी की अपेक्षा नहीं करता है और जोब्रह्मसंसार में आत्मा के भावों से भिन्न नहीं है हे स्वच्छ भावों वाले जीव उस ब्रह्म को तुम देखो अर्थात् उस ब्रह्म का विचार अपने में करो हमें उसे ही प्राप्त करना है जीव विविध प्रकार के भावों को देखकर नाना प्रकार के संकल्प विकल्पों को करता है और अपने मन की विकृत गतियों को उस ब्रह्म से गुप्त रखने का प्रयत्न करता है इसलिए जीव अज्ञान को पाकर संसार को और अपने व्यवहारों को नित्य समझ बैठता है यथार्थ में जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है सुकर्मोंके कारण जीव-दाता और नियन्ता बन जाता है इसलिए हे जीव अपने में ब्रह्म का विचार कर जो तेरे से पृथक् नहीं है और तेरे कर्मों द्वारा नाना प्रकार के आवर्णों द्वारा गुप्त सा किया हुआ है

यदि प्राणियों के हित को तुम चाहते हो तो तुम्हारा ही पवित्र अभ्यास बढ़ेगा जिस से तुम ज्योतिर्मय होकर प्रभावी बनकर सब में मिल जावोगे।

त्वं ब्रह्म सर्वमनुजेषु गतो नियन्ता ॥
भावंच विद्धि सुरतिस्तु निजात्मना त्वम् ।
ब्रह्मस्वरूपममृतं च निजं विदित्वा ।
गच्छेः सुखं च कथयन् जगते शिवोऽहम् ॥ ७२

भावार्थ—हे जीव, सब प्राणियों में व्याप्त जगत के कार्यों का स्वामी भूत तू ही ब्रह्म है अपनी आत्मा के विचारों से मधुरता में व्याप्त होकर तुम संसार के पदार्थों का निरीक्षण करो अपने को स्थाई ब्रह्म का स्वरूप समझ कर संसार के लिए मैं कल्याण रूप हूं ऐसा कहता हुआ तू सुख को प्राप्त कर। अर्थात् अपने को ब्रह्म में लय करता हुआ तू संसार के पदार्थों में विचरण कर। हे जीव, तू संसार का शासक बन कर संसार के पदार्थों की व्यवस्था को कर जब मानवता के भाव विकसित होते हैं तो मानवता ही संसार के पंचभूतों में और पदार्थों में सुन्दरता बन कर निवास करती है आकर्षण का केन्द्र जीव सदा ही व्यवहार की पवित्रता को सीखे अन्यथा व्यवहार के विपरीत होने से जीव के सामने अराजकता

आती है इसलिए तू पवित्रता से सुखरूप बन कर व्यवहार को भी सुखमय बना दे। बुद्धि का सम्बन्ध सदा ही कल्याण के भावों से है यदि दूसरों का हित करने वाली बुद्धि जीव के पास नहीं है तो जीव विवेक भ्रष्ट हो कर दुःखों का आगार बनता है इसलिए तुम बुद्धि के साथ चलते हुए अपने पर नियन्त्रण करो अपनी इन्द्रियों को सुखमय बना कर रोम २ से ब्रह्म का स्वरूप बन जावो। ७२

सूक्ष्मप्रकारविभवैस्त्वमसि प्रकीर्णः ।
आकाशवद् विलसितः खलु विश्वरूपः ॥
उत्पत्तिपालनलयादिविकार शून्यः ।
भूत्वा वशी जनसुहृद् भव शैवकर्माः ॥ ७३

भावार्थ—सूक्ष्म भावों के द्वारा तू ही संसार में व्याप्त हो रहा है निश्चयपूर्वक विश्व के प्राणियों का प्रतीक होकर तू आकाश की नाईं शोभित हो रहा है अर्थात् तेरा अपरिमित प्रभाव सब को आकर्षण कर रहा है उत्पत्ति-पालन-संहारादि विकारों से शून्य होता हुआ-तू प्राणियों का मित्र बन कर सब भावों और जीवों को अपने आधीन करता हुआ इन्द्रियों के विकारों को जीतने वाला कल्याण प्रद कर्मों के करने वाला होकर तू व्यवस्था को

कर संसार में जीव यदि पंचभूतों के कण २ में अनेक प्रकार से बलिदान करे तो उसमें भी जीव की ब्रह्मत्व शक्ति प्रकट होगी प्राणियों पर दया और क्षमा के व्यवहारों वाला जीव सदा ही अपरिमित होता है आकाश की ज्योतिं जीव का स्वरूप तब बन जाती है जब सम्पूर्ण विकार और सम्पूर्ण शोभायें जीव के शासन में व्यवहार करती हैं अर्थात् जीव के संकेत से ही संसार के गुण जब चलते हैं तब जीव और ब्रह्म की एकता होती है सदा संसारियों का कल्याण मर्यादा के साथ करने वाला जीव निस्पृही हो कर विकारों की उपेक्षा से महत्त्वशील होजाता है यह ही ब्रह्म है। ७३

भूतं च भौतिकपदार्थपदं विरोधैः ।
अन्योऽन्यमाव्रजति तीक्ष्णतरं स्वकृत्यैः ।
त्यक्त्वा च सङ्गविकृतिं मुनिभावचेताः ॥
ब्रह्म स्मर द्रुतमिदं मतये विशुद्धः ॥ ७४

भावार्थ—संसार के प्राणी और पदार्थ परस्पर विरोध भावों के द्वारा अपने व्यवहार गुणों से परुषता को प्राप्त करते हैं अर्थात् मनुष्यों को प्राप्त करके परस्पर विरोध करने वाले पदार्थ अपने प्रभाव को मनुष्य में छोड़ जाते

हैं इसलिये मनुष्य सावधान होकर आसक्ति के व्यवहारों को छोड़ कर ऋषियों का अनुकरण करता हुआ मुनियों के सौम्य भाव वाला पवित्रता के कारण शुद्ध व्यवहार वाला तू शुद्ध बुद्धि के लिए शीघ्र ही ब्रह्म का स्मरण कर अर्थात् अपने को पवित्र बनाने के लिये ब्रह्म का सहवास कर संसार के पदार्थ विविध विरोधों को दिखाकर तुम्हें पतित कर देंगे इसलिये हे जीव तपस्या की साधना तुम्हारे निश्चित ध्येय को प्राप्त कराने के लिए तुम्हारा साथ देंगी वासनाओं का त्याग कर तू केवल ब्रह्म का चिन्तन कर तुम्हारी बुद्धि कटुता के प्रभाव में न आकर तुम्हारे ऊपर मधुरता की वर्षा करेगी जीव ब्रह्म के निकट जाने के लिये सुविधा प्राप्त कर सकता है इस तरह जीव अपने मधुरगुणों द्वारा ब्रह्म के साथ क्रीड़ा करता हुआ ब्रह्म रूप हो जायगा सदा संसार के पदार्थों की वासना मनुष्य को ढूंढती है क्योंकि मनुष्य के विना संसार की सुवासना-कुवासना अपना निश्चित निवास नहीं बना सकती हैं इसलिये जीव उपयुक्त भाव के द्वारा इन में पतित नहीं होगा और उपेक्षा दृष्टि से व्यवहार करेगा तो ब्रह्म का स्मरण ही मनुष्य को देव बना देगा जिससे संसार की शान्ति बढ़ेगी ।७४

विश्वस्य चायतनमेव परं कृती यत् ।
सूक्ष्माच्च सूक्ष्मगमनं महतो महान् यत् ॥
तद् ब्रह्मतत्वचतुरस्त्वमसि प्रणेता ।
सर्वात्मभावलसितो जनहृत् प्रियस्त्वम् ॥ ७५

भावार्थ—जो ब्रह्म विश्व के जीवों का आश्रय है प्रत्येक कार्य की व्यवस्था में विलक्षण गति वाला है जो सूक्ष्म पदार्थों से सूक्ष्म भाव वाला है जो बड़े से बड़ा है संसार के पदार्थों के तत्त्वों को बनाने वाला और संसार के चलाने वाला वह ब्रह्म तू ही है तुम ही तो सबकी आत्मा के भावों में शोभित होते हो मनुष्यों के प्राण तुल्य आकर्षण केन्द्र तुम तो हो अर्थात् तुम अपने को समझ कर संसार के पदार्थों का उपभोग करो तुम्हारी शक्ति संसार के प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त हो रही है इस लिये सूक्ष्म और और स्थूल पदार्थों की अन्वेषणा करने वाला जीव इन दोनों की साम्यता को जानने वाला बन कर दुरुपयोग के व्यवहारों से पृथक् रहता है सदा ही वह अवसर की प्रतीक्षा करता है और अपने में ईश्वरीय भावनाओं को सदा अपनाता रहता है संसार के सौंदर्य का निर्माण जीव के हाथों में है यदि जीव अपनी त्याग और तपस्या से प्राणियों की प्राण लीला बन जाता है इस लिये हे जीव

सम्पूर्ण पदार्थ तो तेरे प्रतीक हैं यदि जीव प्रकृति को नाट्यस्थलो बना कर सुन्दर अभिनय करता है तो प्रकृति भी जीव की याचना करती है इस लिये ब्रह्म तेरे से पृथक वस्तु नहीं है हे जीव समयानुसार गुणों के विन्यास को और पवित्र कार्य के विस्तार को केवल सीखलो और उपार्जित सम्पति जीवों के लिये प्रदान करो और प्रसन्नता को प्राप्त करो । ७५

> भर्ताऽसि लोकवसतां जगतां सुकर्ता ।
> त्वं ब्रह्म सुन्दरमति र्जननी कृतार्था ॥
> सम्यग् जितेन्द्रियरुचि र्भव विश्वमूर्तिः ।
> सत्यं शिवं भज वदंश्च सदा शिवोऽहम् ॥ ७६

भावार्थ—हे जीव लोक में रहने वाले मनुष्यों को तू ही पालन करने वाला है और विश्व की कलाओं का निर्माण करने वाला है तू ही ब्रह्ममयी पवित्र बुद्धि वाली सम्पूर्ण कर्मों की स्रोत रूप सफलता देने वाली माता है मैं कल्याण स्वरूप हूं ऐसा कहता हुआ तू सत्य रूप शिव का स्मरण कर । जितेन्द्रिय होकर विश्वमूर्ति बन जावो अर्थात् अपने को व्यापक समझते हुए तुम संसार पर शासन करो, जीव के सम्बन्ध संसार के पदार्थों से तब

पृथक् हो जाते हैं जब जीव अपने को सब प्राणियों से अभिन्न देखता है तब सत्यताका व्यवहार जीव की कल्पना नहीं होगी अपितु जीव का सत्य चिन्तन पदार्थों का भी जीवन होगा इसलिए संसार के सम्पूर्ण चक्र जीव के सामने अपनी चतुरता भूल जाते हैं क्योंकि जीव सदा ही कल्याणमय होकर उस शान्त स्वरूप ब्रह्म का अङ्ग बन जाता है इसलिये ऋषियों के भाव जीव के लिए अनुकरणीय होंगे और सदाचार की प्रणाली जीव की अमिट मर्यादा होगी जिससे जीव ब्रह्म वाद का नाद बजाता हुआ सहर्ष शब्द को व्यापक करेगा और शान्ति की वर्षा होगी। ७६

ब्रह्मात्मधीश्च परमात्मगतिं प्रयातः।
तस्या ऋते तु कलुषो भवति प्रदोषैः॥
चित्तं ह्यतश्च परमात्मनि धेयमीशे।
ब्रह्मैव गच्छ भुवनं हि विहाय विद्वान्। ७७

भावार्थ—ब्रह्ममय आत्म बुद्धि वाला महान् आत्मा के विचारों को प्राप्त करता हुआ नाना प्रकार की विद्या को प्राप्त करके सम्पूर्ण विश्व को छोड़ कर ब्रह्म को प्राप्त कर। अर्थात् विद्वान् बन कर तत्त्व को विचार। ब्रह्ममय बुद्धि के बिना अनेक प्रकार के दोषों द्वारा मनुष्य पापी

बन जाता है इसलिए सर्व शक्ति के स्रोत उस महान् आत्मा में अपने चित्त को जोड़ दो। संसार स्वतः हि उन पदार्थों की भ्रान्तियों को प्राप्त करता है जहां विवेक का भाव मिट सा जाता है इसलिए हे जीव तू सदा ही अपने भीतर विवेक द्वार। अपने विचारों का स्वयं ही मनन कर। क्योंकि मनुष्य के विचार ही सब से सूक्ष्मतर माने गये हैं। विचारों का संघर्ष बड़े से बड़े संघर्षों से भी बलवान् है यदि जीव तुम्हारी भावनायें पवित्रता का स्रोत बहायेंगी तो हो सकता है कि तू भी संसार का शासन करने वाला विराट् हो जाये, तुम्हारी बुद्धि जब तक संसार के भुवनों को अपना समझ रही है तब तक तुम अपनी विद्वत्ता की भावना को नहीं पहचान सकोगे इस लिये ब्रह्ममय बुद्धि को बना कर तू संसार में शासन करेगा। तुम्हारा प्रतिद्वन्दी कहीं भी दृष्टि गोचर नहीं होगा जहां सौंदर्य में भाव हैं वहां प्रकृति तुम्हारा नियंत्रण मानेगी इस लिये तू ब्रह्म का विशेष निदर्शन बन जायगा तू जीव होकर भी जीवों का आश्रय माना जायेगा। ७७

विश्वे सदात्मचरितं जनपूर्णरूपम् ।
शाश्वत् शुभं निवससि भ्रमवीतरागम् ॥
ब्रह्मात्मभेदममृतं हि विमुच्य साधुः ।
नष्टे च देहविकृतौ लभते च तत्त्वम् ॥ ७८

भावार्थ—सम्पूर्ण संसार में जनता के व्यवहारों से युक्त रूप वाला सदा ही आत्मा के चरित्र के स्वभाव को प्रकट करने वाला भ्रान्ति के भावों से राग रहित होकर तुम नित्य निवास करते हो अर्थात् भ्रम वाले व्यवहारों से पृथक् होकर पवित्रता से प्रेम करने वाले तुम नित्य प्रसन्न रूप होकर निवास करते हो इसलिये ब्रह्म और आत्म तत्त्वों के झूठे भेदों को छोड़कर साधु रूप होकर तू ब्रह्म का विस्तृत दर्शन कर। देह के विकारों के नष्ट होने पर मनुष्य तत्त्व को प्राप्त कर सकता है। अर्थात् अद्वितीय भाव वाले ब्रह्म रूप आत्म विचार में मग्न हो कर तू तत्त्वों का अन्वेषण कर सकता है संसार के भाव तेरे लिए तब तक अशान्त हैं जब तक तू स्वयं तत्त्वों का निर्माता नहीं बनता है संसार का सौंदर्य तेरे से ही पूर्ण है ऐसा विचार कर तू पृथ्वी का शासन कर। क्योंकि तेरी ही लीला संसार के कण २ में व्याप्त हो रही है किन्तु सरल और मधुर बनना ही तेरे भावों की प्रेरणा हो। इस लिये हे जीव नित्य ही तू अपने को अभिन्न मानता हुआ शोक और हर्ष से पृथक् हो कर अपने स्वरूप का दर्शन कर। जब तक तेरी प्राण लीला लोगों से सम्पर्क नहीं रखती है तब तक तू अपने को पृथक् मानेगा इस लिये प्रकृति की स्थूलता से परे हो

कर सूक्ष्म भावों से तू ब्रह्म ही है ऐसा विचार तुम सदा करो । ७८

ब्रह्मास्मि नित्यनियमैश्च विचारमग्नः ।
निश्चित्य नैजगमनं भुवनस्य भोक्ता ॥
त्वं भाषमाण उपगम्य तदेव सत्यम् ।
ब्रह्म स्वयं भव परोक्षमगोचरं तत् । ७९

भावार्थ—अपने नित्य नियमों से आत्मविचारों में मग्न हुआ २ अपने गमन कृत्यों को जानकर मैं ब्रह्म हूं संसार के पदार्थों का मैं भोगने वाला हूं ऐसा कहता हुआ तू उस सत्य रूप को प्राप्त करके इन्द्रियों से परे अव्यक्त रूप वह ब्रह्म तू ही बन जा। अर्थात् सब ओर व्यापक अपने गुणों द्वारा प्रकट उस ब्रह्म का तुम अनुकरण करो अन्यथा तेरी गति ब्रह्म के बिना नहीं है हे जीव तुम अपने विचारों से अपने को अभ्युदय की ओर पहुंचाकर सदा ही उस अव्यक्त ब्रह्म की उपासना करो क्योंकि नम्रता की भावना तुम्हारे रोम २ को मधुर बना देगी सदा ही सरलता तुम्हारे पास निवास करती हुई संसार की कटुता को नष्ट करदेगी तुम्हारा जीवन सदा सुख की तरंगों में स्नान करता हुआ

प्रसन्न हो जायेगा इस लिये ईश्वरीय भावों का प्रसार तुम्हारे लिये आवश्यक है मनुष्य जितना सूक्ष्म बनेगा उसकी महिमा उतनी व्यापक होगी क्योंकि सूक्ष्मता का संसर्ग स्थूलता को भी जीवन देता है सूक्ष्म और स्थूल भावों के रहस्य को तुम समझ कर अद्वैत भावना वाले बन जावोगे इस लिये तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म ही हो। ७९

त्वं वासनां कलुषितां तु कृतां विनीया।
ऽसत्यैश्च भेद करणै विंहिताञ्च शीघ्रम्॥
त्यक्त्वा च भावगमनां हि विमुग्धलोकाम्।
मुक्त्वा ह्यभावरुचिरां स्मर तच्च नित्यम्॥ ८०

भावार्थ—पाप मय वासना को दूर करके असत्य और नाना प्रकार के भेद के साधनों से बनाई हुई अपनी संस्कारों की भावना को छोड़ कर लोगों को मोहित करने वाली भाव में गमन करने वाली वासना को त्याग कर और अभाव में सौंदर्य को प्राप्त करने वाली भावना को भी दूर करके नित्य ही उस ब्रह्म का स्मरण कर। क्योंकि तेरा आश्रय ब्रह्म ही है संसार की विविध प्रकार की लीला कुछ गुण विन्यास रखती है उस लीला का उपयोग करने वाला जीव सदा ही लाभ उठाता है यदि

जीव विविध क्रियाओं में गमन करता हुआ स्थिर मति हो तो जीव की अचल भावना विविध क्रियाओं की शक्ति बनती है जैसे नियमित भोग वाला सूर्य सबका आश्रय प्रतीत होता है ऐसे ही नियमित और अचल सम्पति वाला जीव नियन्ता बन सकता है जहां भाव और अभाव के कृत्रिम सौंदर्य की तुलना नहीं होती है सदा ही जीव जब कैवल्य धाम में रहता है तब वह बृह्म का स्वरूप और अद्वैत भाव वाला हो जाता है परोपकार के भाव कभी भी वासना को मन में नहीं रहने देते हैं इस लिये जीव बाह्य स्थल में अभिनय करता हुआ आन्तरिक कौतुक की अपेक्षा करता रहे वह कौतुक ही उसे सफल बनायेगा ॥ ८०

गोनिर्विकल्पसुमति निंजरूपभावः ॥
तद् ब्रह्मणि स्थिरगति र्भव शास्त्रनीतिः ।
आनन्दगीतविदितो जनधर्मवेत्ता ।
प्राणाश्चिरं जगति सन्ति विवेक शीले ॥ ८१

भावार्थ—इन्द्रियों की विकृत कल्पनाओं से रहित होने के कारण श्रेष्ठ मति वाला अपने आत्मा के स्वरूप को जानने वाला शास्त्रों की मर्यादा को पालन करने वाला द्विज और शास्त्रों से बताए हुए ब्रह्म में निवास करने

वाला अर्थात् आत्म विचार में रुचि वाला मनुष्यों के कर्तव्यों को जानने वाला आनन्द के गीतों द्वारा प्रतीत हुआ तू शान्त भावों वाला हो जा। क्योंकि धर्मात्मा और बुद्धिमान् पुरुष में अधिक काल तक प्राण माने जाते हैं अर्थात् धर्मात्मा और सदाचारी को मनुष्य सदा चाहते हैं तेरा सम्पर्क ही साधारण प्राणियों के लिए अमृतमय तब होगा जब तू मर्यादाओं की पृथाओं का प्रतीक बनता है तेरे गुणों के गाने वाले ऋषि तब अनन्य सुख को प्राप्त होते हैं क्योंकि तेरी स्तुतियों का पारावार नहीं है इस लिए हे जीव संसार के रहस्यों का ज्ञान करने से ही तू ब्रह्म का स्वरूप होगा निश्चित रूप से तेरा निवास उन विभूतियों में है जिन्होंने ईश्वरीय भावों को धारण किया है इसलिए भी तू सर्व शक्तिमान् ब्रह्म है संसार के विकारों को उपयोग करने से व उनको अमृत का रूप देने से ही तू अद्वितीय है। ८१

व्यर्थं हि भाषणमिदं परिहाय शब्दैः।
तन्द्रां मते व्यसनजां च यमी महात्मा॥
अभ्यासकृत्यशिवमना गतमोहनिद्रः।
ब्रह्मात्मतत्त्वममृतं ननु पश्य योगी॥ ८२

भावार्थ—व्यर्थ शब्दों के साथ अपने भाषणों को छोड़ कर जितेन्द्रिय और विशाल आत्मा के विचारों वाला बन कर विकारों से पैदा होने वाली तन्द्रा को भी दूर करके मोह के भावों से रहित होकर अभ्यास के कृत्यों में और कल्याण के भावों में मन लगाने वाले तुम कर्मठ बन कर ब्रह्मरूप आत्मा के सूक्ष्म विचारों को अमृत समझ कर देखो। अर्थात् अपने नियमादियों के द्वारा उन्नत भावों का विचार करो। वह मनुष्य संसार में ज्योति की नाईं चमकते हैं जिन्होंने अपने व्यर्थ साधनों का त्याग कर दिया है जगत की सम्पत्ति उन मनुष्यों से दूर रहती है जो व्यसन और मोह को अपना आश्रय बना बैठते हैं इसलिए हे जीव विशालता के भावों में तुम रहकर अभ्यास और वैराग्य का अवलम्बन करो व्यर्थ की चिन्तायें तुम्हें व्यर्थ बना देंगी सदा ही अपनी आत्मा रूप को ब्रह्म ही समझो संसार और तेरे में भेद फिर नहीं होगा अद्वैत भावना का पुजारी कलहादि विकारों से दूर हो जाता है। ८२

निर्धाय चात्मसुरुचिं विजितेन्द्रियस्त्वम्।
सर्वं मुमुक्षुरनृतं सुखितो विदित्वा॥
स्रोतो हि तच्च वपुषां निखिलं निविष्टम्।
ज्ञात्वा विशुद्धचरितेन हि वेत्सि नैजम्॥ ८३

भावार्थ—हे जीव तुम इन्द्रियों को जीत कर आत्मा में रुचिको धारण करके मोक्ष की इच्छा वाला सब ओर से सुखी बना हुआ सब स्थूलमय जगत के पदार्थों को असत्य समझता हुआ सब में व्यापक हुए २ सम्पूर्ण देहधारियों के आधारभूत उस ब्रह्म को जान कर अपने शुद्ध कर्तव्यों द्वारा अपने स्वरूप को समझोगे। इसलिए हे जीव तुम व्यसनों से दूर हट कर प्रत्येक वस्तु को लाभ की दृष्टि से देखो। संसार की वस्तुओं का अन्वेषण करते हुए यदि विवेक से भ्रष्ट हो गये तो तुम्हारा पतन अवश्य होगा इस लिए संसार रूप कारागार से निकलने के लिये पाप और पुन्य की भावना को जनता पर छोड़ कर तुम शान्त हो सकते हो तुम्हारी दृष्टि तब पवित्र हो सकती है जब तुम अपने अन्दर के प्रकाश से चलने लगोगे इस स्थूल जगत को सूक्ष्म तत्त्वों के द्वारा निर्माण कर सकोगे तुम ब्रह्म का रूप होकर संसार पर शासन करोगे इसलिए सब से पवित्र उन आत्म विचारों का मनन करो जिन्होंने संसार के भीतर भी अपरिमित सामर्थ्य भर दी है। ८३

अस्माकमुद्धतकृतेर्जगतोऽपनेता।
ब्रह्मैव केवलमिदं मधुरं शिवंत्वम्॥
विज्ञाय चात्मकरणै र्ज्वलितां विभूतिम्।
संसारकार्यरमणो हि रमस्व तत्त्वैः॥ ८४

भावार्थ—हमारी उच्छृङ्खल भावनाओं को संसार से दूर करने वाला कल्याण रूप सबको आकर्षण करने वाला ब्रह्म तू ही है अपनी आत्मा के साधनों से अपनी तेजस्वरूप विभूति को जान कर संसार के कार्यों में रमण करने वाला हे जीव तू ही सूक्ष्म भावों के साथ नित्य नई नई क्रीडा को कर। अर्थात् तुम सदा आत्म विचारों के साथ यदि किसी कार्य को करोगे तो तेरी प्रसन्नता उस कार्य को बढ़ायेंगी तुम संसारके तत्त्वों में यदि अपनी भ्रान्त वृत्ति पर विजय प्राप्त कर सकते हो तो संसार के कार्य तुम्हें केन्द्र विन्दु मान कर तुम्हारे चारों ओर भ्रमण करेंगे केवल कल्याण रूप ही बन कर तुम अपनी शक्तियों को जान सकते हो आत्मा का प्रकाश तुम्हें उच्छृङ्खल वृत्तियों से पृथक् करके संसार के तत्त्वों के साथ क्रीड़ा करना सिखायेगा इसलिए हे जीव तुम कर्मठ बन कर विनाश की प्रथाओं को रोक दो और कुत्सित वासनाओं को त्याग दो फिर तुम्हारे गीतों को संसार स्नेह पूर्वक गायेगा इससे तुम ब्रह्म के भावों से दीप्त होकर शासन करोगे। ८४

शान्ते तु चात्मनि निजे विरले ह्यतीते।
सर्वात्मरूपप्रकृतौ ननु भिन्नभावे ॥

मोक्षश्च को जगति बन्धगुणोऽपि को वा
स्थानंविनोर्ध्वगतिहृत् सजवं विधेयम् ॥ ८५

भावार्थ—मनुष्यों में विरल रूप सब से विरक्त भाव से रहने वाले अपने आत्मा के शान्त होने पर और संसार में भिन्न २ भावों के होने पर भी सब प्राणियों के रूपमय और स्वभावमय होने पर संसार में मोक्ष के गुण और बन्धन के भाव कैसे होते हैं इस लिए अपने स्वरूप को निराधार और ऊंचे भावों वाला कर्मठ बनाना चाहिए। सुखमय आत्मा के रूप होने पर बन्धनादि दुःख नहीं होते हैं इस लिए जीव अपने को सब से पृथक् समझ कर शान्त भावना को धारण करके शान्त और प्रसन्न होने पर विपत्ति के स्थान और हर्ष के स्थान फिर कैसे तेरे सामने प्रकट हो सकते हैं क्योंकि सूक्ष्म तत्त्वों का अन्वेषण तुम्हारे मार्ग में बाधा को दूर करेगा स्वतन्त्र रूप होकर सब का हृदय बन कर तू बड़े वेग के साथ गमन कर सकता है तेरी गति को संसार का स्थूल वैभव नहीं पहुंच सकेगा तेरा सामना करने वाला कोई भी तत्त्व तैयार नहीं होगा तेरे प्रभाव के आधीन संसार पथ स्वच्छता को प्राप्त करेगा इसलिए तू अबाधगति वाला ब्रह्म ही है ॥ ८५

सत्यस्वरूपगुणिबोधगतिञ्च विश्वे ।
आनन्दरूपपरमात्ममतिं जनेषु ॥
व्याप्तं विदन् न वितथं रहितञ्च भेदात् ।
आत्मैकभावनिरतः स्मर नैजरूपम् ॥ ८६

भावार्थ— हे जीव तू अपने आत्मा के विचारों को मनन करता हुआ संसार में सत्यरूप और गुण वाले आत्मा के पवित्र व्यवहारों को सुखमय आत्मा के विचारों को अनेक प्रकार के भेदों से पृथक् ही मनुष्यों में व्याप्त उस सर्वशक्तिमान् ब्रह्म को जानता हुआ अपने स्वरूप को स्मरण कर, अर्थात् पवित्र और समर्थ शक्तियों के साथ तू अपने को जान सकता है केवल अपने कर्तव्यों का तू पालन कर। मनुष्यों की भेद भावना तब तक विपत्ति और संघर्ष का कारण बनती रहेगी जब तक तुम आत्मा के विचारों का मनन नहीं कर सकते हो यह सारा संसार तुम्हारी पवित्र प्रेरणा से ओत प्रोत हो रहा है। हे जीव यदि तुम व्यवस्था और सौंदर्य के पुजारी हो तो तुम्हारी गति तब तक असत्यता वाली न होगी जब तक तुम निर्भय होकर मानसिक भावों से चलते हो संसार के पदार्थ तुम्हारे बिना मर्यादा को छोड़ सकते हैं क्योंकि तुम सब का केन्द्र बन रहे हो हे जीव तुम ब्रह्म में एकता करने

से सुन्दर बन सकते हो इसलिए केवल अपने शुद्ध विचारों का मनन करो।

तत्सन्मनो ह्यविषयं जगतां गृहं त्वम्।
त्वां नेति नेति कथयन् श्रुतिवाक्यमोघा॥
तच्छोभते सहृदया प्रकृतीश्च जित्वा।
ब्रह्म स्वयं तदवधारय हर्षकालः॥ ८७

भावार्थ—हे जीव तुम संसार के प्राणियों के स्रोत हो वह ज्योतिरूप ब्रह्म तुम मन के भावों से परे हो संसार के भावों को जीत कर सरल रूप और सार्थकता को धारण करने वाली वेदों की वाणी नेति नेति शब्दों से तुम्हें करती हुई शोभा को प्राप्त हो रही है अर्थात् तेरे सामने वेदों का गम्भीर ज्ञान भी नम्र होकर तेरे गीत गाता है इसलिए जीव तुम सदा प्रसन्न रहते हुए अपने आपको ब्रह्म का स्वरूप समझो। अर्थात् तुम्हारे सामने कोई विपत्ति कोई संघर्ष नहीं होगा यदि तुम अपने कर्तव्यों से सुन्दर बनते रहे तुम्हारा कार्य अपरिमित होगा यदि तुम व्यसनों के जाल से परे रहे यह सारे संसार के पदार्थ तेरे लिये नित्य नया २ प्रकाश धारण करेंगे यदि तुम इनको प्रकाश ज्योति प्रदान कर सकोगे संसार के ऋषि मुनि और

सद् ग्रन्थ तेरा अनुकरण करेंगे यदि तुम ब्रह्म की नाईं शासन करोगे सदा ही पवित्रता की धारा तेरे से उत्पन्न होकर समाज को पवित्र करती है यदि तुम वीतराग पुरुष की नाईं सौंदर्य का तत्व ले सकते हो तो तुम्हारा जीवन ब्रह्म का जीवन होगा और लोग तुम्हें सदा पूजेंगे इन अद्वैत भावों से तुम ब्रह्म हो। ८७

अद्वैतचेतनधियं परिधाय हर्षम् ।
आपादयस्व मनसा जननं कृतार्थम् ॥
शुद्धः परित्यज युवा कलुषं मनीषी ।
त्वं प्राप्नुवन् त्वविषयं जगते च देहि ॥ ८८

भावार्थ—प्रसन्नता पूर्वक अद्वैत भावों के साथ चेतना बुद्धि को धारण करके अपने जन्म को सफल बनावो पवित्र बुद्धि और शुद्धाचरणों वाला तू संसार के व्यसन रूप पापों को छोड़ दे, सत्य रूप ब्रह्म को प्राप्त करता हुआ तू संसार के लिए सर्वस्व दे डाल, अर्थात् तुम सदा प्रसन्न रहते हुए लोगों की सेवा करते हुए अपने शुद्ध कर्तव्यों द्वारा अपने को उठावो संसार के लिए संसार की प्रत्येक वस्तु को लाभप्रद समझ कर सर्वत्र व्यवस्था को करो। संसार कलह की भावना छोटे लोगों में रहती है इस लिए

तुम सबमें गुणों द्वारा प्रवेश करो और सबके भावों का मनन करो अपने अभिनय को सुन्दर बनाते हुए प्राणियों का आकर्षण केन्द्र बनो यदि मृत्यु को जीतने वाले तुम बन सकते हो तो संसार तुम पर अभिमान करेगा यदि प्रकाश का केन्द्र तुम बन सकते हो तो संसार का अज्ञान तेरे द्वारा ही नष्ट होगा इसलिए पवित्रता की धारा वाला बन कर तू जगत् को पवित्र बना दे और अपने रोम २ से उस प्रणव का जाप करो जिसे संसार ने बोलना ही कर्तव्य समझा है इसीसे तुम अद्वैत भावों वाले ब्रह्म बन जावोगे । ८८

> भेदं विलोकयसि बालिशताप्रभूतम् ।
> शुद्धाद्धि वारयति स प्रपथाच्चरित्रैः ॥
> ब्रह्मात्ममग्नगमनः सुतरां प्रियस्त्वम् ॥
> तस्मिन् मनः कुरु विशुद्धगतावभेदैः ॥ ८९

भावार्थ—हे जीव ये संसार अपने अनेक प्रकार के चरित्रों के साथ शुद्ध मार्ग से मनुष्यों को रोकता है अर्थात् अपनी विविध लीलाओं से प्राणियों को मोहित करता है इसलिए मूर्खता से पैदा होने वाले भेद को तुम देख रहे हो ब्रह्मरूप आत्मा के अनुकूल व्यवहार करने वाला सबके साथ प्रेम करने वाला तू अनेक भेदों के साथ विचरण

करता है इसलिए अभेद भावों के साथ शुद्ध स्वरूप में अपने मन को लगावो क्योंकि संसार की मर्यादा उस महान् पुरुष से चलती है जो शुद्ध मार्गों का आश्रय और कर्ता है भेद भावों के कारणों को जो एकता के सूत्र में बांध देता है वह सबका आकर्षण केन्द्र बन जाता है जो आत्मा का स्वरूप बन कर लोगों को अनेक मार्गों में रखता हुआ भी एक लक्ष्य की ओर ले जाता है वह संसार का चलाने वाला माना जाता है इसलिए हे जीव अपने को मित्र भाव वाला बना कर संसार का आदर्श बनो और दृढ़ता के संस्कारों से तुम ओत प्रोत होकर रहो क्योंकि संसारकी प्रकृति तुम्हें विविध भावों में करके पृथक् २ करेगी तुम्हारा जीवन नाना प्रकार की उलझनों में न पड़ कर सीधा ब्रह्म के साथ सम्बन्ध करे इसलिये तुम अपने जीवन के नियमों को धारण करो।

विष्णुश्च रक्षकगुणः प्रणयी समेषाम् ।
ब्रह्मा च सृष्टिकरणे हि वशी प्रसिद्धिः ॥
संहारशक्तिकृतभीतिरपि प्रसन्नः ।
साक्षात् शिवो विलसति भ्रम एव सत्यम् ॥ ६०

भावार्थ—सब प्राणियोंके साथ प्रेम करने वाला पालन गुण प्रधान भगवान् विष्णु-और सृष्टि को करने के लिये प्रसिद्धि को पाने वाला-सब इन्द्रियों को अपने आधीन रखने वाला ब्रह्मा-संहार की शक्ति से भय दिखाने वाला भी सदा कल्याण रूप शङ्कर क्रीड़ा करता है यह तीनों विभूतियां भ्रम ही हैं। हे जीव तेरी कुत्सित संस्कारों से सोई हुई वृत्ति को जागृत करने के लिये यह विभूतियां प्रतीक मात्र हैं यदि तुम अपने ब्रह्म को जान कर पवित्रता पूर्वक विचारोगे तो यह समय २ की अवस्थायें तेरी ही हैं यदि तू अपनी उपयोग की शक्ति को जान ले-तो यह तीनों विभूतियां तेरे ही गुण बन जायेंगे। और तेरी उद्देश सिद्धि में तेरा ही साथ देंगे। अज्ञान की सत्ता से ऊपर उठने के लिए यह प्रपंच कुछ देर तक सत्य भी मानते हो अपने कर्तव्यों को शुद्ध बनाने का कर्तव्य तो करना उचित है फिर तुम समर्थ होकर इस प्रपंच के रहस्य को स्वयं जान लोगे इसलिये हे जीव अपने व्यवहारों की सूक्ष्मता को सत्य जान कर उदारता को अपनावो और विकार रूप द्ररिद्रता को छोड़ दो। इसी से तुम ब्रह्म बन जावोगे। सर्वत्र तुम्हारा प्रभाव होगा। ६०

शाश्वन्न निराकृतिरजः सगुणात् परं यत् ।
सत्यं तदेव नितरां न जगच्छरं यत् ॥
त्वं ब्रह्मणः सपदि भिन्नमिदं प्रभूतम् ।
संचिन्त्य चैन्द्रमनृतं वद नाम सोऽहम् ॥ ९१

भावार्थ—जो सगुण दशा से परे है सदा अजन्मा निराकार भावों वाला है वही सत्य ब्रह्म है जो विनाश शील जगत है वह ब्रह्म नहीं है तू उस अविनाशी ब्रह्म से पैदा हुआ है यह विकारों वाला संसार तेरे से भिन्न है इस झूठे इन्द्रजाल को विचार कर उस सूक्ष्म तत्त्व वाले सारे संसार का नियन्ता मैं ही हूं ऐसे नाम को तू कहे। अर्थात् सब पदार्थों के तत्त्व रूप बन कर तुम सदा अपनी व्यापक भावना को स्मरण करो। हे जीव तुम भी सत्य गुणों को अपना कर विनाश शील जगत से पृथक् हो सकते हो यदि तुम सुख दुःख के प्रवाहों पर शासन कर सकते हो इन विकारों की सृष्टि में रहकर भी यदि निन्यन्त्रण तुम्हारा है तो तुम्हारे सहवास के सौंदर्य का यह स्थान बन सकते हैं। हे जीव सदा ही तुम्हारी दृष्टि यदि इस संसार रूपी इन्द्रजाल से परे है तो यह क्रीडास्थल तेरा ही है अल्पज्ञ प्राणियों की शक्ति बढ़ाने का तुम्हारी रचना ही साधन होगी उपकार भावना से तुम ब्रह्म ही हो। ९१

ज्ञाने मुमुक्षुमनुजस्य पदे च भेदः ।
भूवासनामतिमतां प्रतिबन्धरूपः ॥
जन्तुं सदा व्यथयति भ्रमयुक्त भावः ।
वन्ध्यासुपुत्रकथने तु यथा हि रूढ़िः ।: ९२

भावार्थ—मोक्ष की इच्छा वाले पुरुष के पद और ज्ञान में जो भेद है वह संसार की वासना में बुद्धिमानों की रुकावट है वह भ्रान्ति को धारण करने वाला भाव प्राणियों को दुख देता है जैसे वन्ध्या स्त्री के पुत्र के कहने की प्रथा प्रचलित है ऐसे यह भेद भी शब्द से कहा जाता है अर्थात् ज्ञानी के स्वरूप को और उन्हीं के भाव को पृथक् समझना अज्ञानता है इसलिए हे जीव विविध भावनाओं के मुग्ध भाव तुम्हें पतित करके भ्रान्त बना देंगे विवेक रूपी साधन से साध्य रूप आत्मा के गुणों का तुम मनन करो। भेद के कारण तुम्हें विविध अभिनय करने पड़े हैं किन्तु किसी में तुम सफल नहीं हुए हो इसलिए ज्ञान के स्रोत उस ज्ञानी आत्मा के विचारों का मनन करो यदि तुम्हारे सूक्ष्म और पवित्र विचार तुम्हें एकता के सूत्र में बांधते हैं तो मर्यादा पालक की नाईं बन्ध जावो इसी में तुम्हारा सौंदर्य प्रकट होगा और तुम ब्रह्म का सानिध्य प्राप्त करोगे। ९२

लोकं तथा समवधारय सत्यभृत्यः ।
सोऽहं विलक्षणगतिः कथयंश्च नित्यम् ॥
मुक्तेर्गवेषय यमी सुपथं सुधन्यः ।
संसारबन्धनमतिं त्यज येन सौख्यम् ॥ ६३

भावार्थ—हे जीव सत्यता के पुजारी बन कर संसार को उपरोक्त की नाईं असत्य समझो । सदा चतुर भावों वाला मैं हूं ऐसा कहता हुआ तू अपने को धन्य मानता हुआ मुक्ति के मार्ग को ढूंढ । जिस मार्ग के द्वारा संसार के बन्धन की बुद्धि को सुख पूर्वक छोड़ दे । अर्थात् सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करके अपनी मुक्ति का मार्ग समझ ले, संसार की सत्यता को समझ । सूक्ष्म बुद्धि से समझ कर मनुष्य यदि मानवताके लक्ष्य को अपना ले तो वह संसार में अपने उत्तर दायित्व को जान कर एक से बहुत बन सकता है और प्रत्येक पदार्थ में अपनी ज्योति विस्तृत कर सकता है इसलिये तू प्रसन्न भावों वाला होकर मुक्ति के बन्धनों को तोड़ दे जिससे संसार के प्राणियों के सामने आदर्श रख सकेगा । अपनी योग्यता जान कर तू अपने कर्तव्यों को सुचारु रूप से कर । क्योंकि अकर्मठ जीवन सदा ही व्यसनों के द्वारा हमारा पतन कर देगा इसलिए तुम संसार के पदार्थों की व्यवस्था करते हुए सबों में व्यापक हो

जावो उपयोग ही तुम्हें व्यापकता सिखा सकता है इसी से ईश्वरीय भावों का अनुकरण करते हुए ईश्वर बन जावोगे जितेन्द्रिय भाव ही उन्नति का मूल है । ९३

येषां रुचिर्न भवति ध्रुवमार्गवीथ्याम् ।
तेषां गतिश्च पतिता भवमोक्षमार्गात् ॥
मिथ्याजगत् परिहरन् मनसा मनीषी ।
जानीहि गां पशुपतेः सुतरां जनेभ्यः ॥ ९४

भावार्थ—जिन मनुष्यों की रुचि ब्रह्म मार्ग में नहीं होती है उनका आश्रय संसार की मुक्ति के मार्ग से गिरा हुआ प्रतीत होता है मन के भावों को विचारने वाला तू असत्य संसार को छोड़ता हुआ तू पशुपति की भूमि को जान ले अर्थात् लोगों के कल्याण के लिए तुम ब्रह्म के तत्व को पहिचान लो हे जीव कुकर्मों के मार्ग के भाव तुम्हें श्रेय के मार्ग से रोक कर व्यसनों में डाल देंगे इसलिए समय के अनुसार संसार में कार्य के विस्तार को सीख लो । क्योंकि परिवर्तन के भाव तुम्हें भ्रान्त नहीं करेंगे तुम्हारी तटस्थ बुद्धि मोक्ष के मार्ग को पहिचान लेगी । यदि तुम संसार की असत्य भावनाओं को हृदय से छोड़ कर उनका समयानुसार उपयोग करोगे तो सब

संसार के भाव तुम्हारा अनुकरण करेंगे यदि तुम्हारे नियन्त्रण में यह सब स्थूल और सूक्ष्म सौंदर्य आ जाएगा तो तुम ब्रह्म का अभिनय करने से ब्रह्म बन जावोगे यह ब्रह्म का शुद्ध शासन है इसमें मुझे मर्यादा नहीं छोड़नी है ऐसा विचारता हुआ तू अपने कर्तव्य का पालन कर। ९४

मत्तातिरिक्तमपरं भुवि नाऽस्ति किञ्चित्।
यद् वस्तु नेत्रविषयं रचनाविचित्रम्॥
कालत्रयेऽपि वितथं भवति भ्रमः सः।
सर्वं ह्यनात्मचरितं ननु पश्य संगम्॥ ९५

भावार्थ—मेरे से बिना इस संसार में दूसरी कोई वस्तु नहीं है जो नेत्रों का विषय रूप बनी हुई वस्तु विविध भावों के साथ २ सौंदर्य की विचित्रता को प्रकट करती है वह तीनों कालों में सत्य नहीं है। ऐसा तुम विचार करो। क्योंकि संसार की आसक्ति से यह तेरा आवर्ण तुम्हें अन्धेरे में डाल रहा है इसलिए हे जीव तेरे बिना यह तत्त्व-हीन जगत् कुछ भी नहीं है ऐसे समझते हुए तुम अपनी सत्यता को समझो और बार २ कहो कि मेरे बिना कुछ नहीं है, मैं ही इस जगत् को अपने विवेक द्वारा सौंदर्य देता

हूं मेरा यह बनाया हुआ विस्तार है किन्तु एकाकी विकार रहित होकर मैं भ्रमण करता हूं यदि यह विचार तेरे रोम २ को प्रदीप्त कर देंगे तो तेरी बाधायें मिट जायेंगी और तू केवल ब्रह्म रूप होकर प्रकट होगा और यह जड़ जगत् भी तेरी अपेक्षा करेगा तू संगरहित निर्वाण रूप बन जायेगा पवित्रता से शून्य भावों वाला यह ब्रह्माण्ड भ्रम रूप विपत्ति का जनक है इसलिए अपने आत्म स्वरूप के साथ उस अपार ब्रह्म की शक्ति से लाभ उठावो तेरे में भी वह शक्ति भिन्न २ भावों में विभक्त है इसे एक करके देख। इससे ब्रह्म बन जायेगा ॥ ९५

कर्ता विधर्मविकृते विंपदाञ्च बुद्ध्या।
भोक्ता हि धर्मसुगतेः शिवकर्मसूर्तेः ॥
भावद्वयं तनुधृतां परिहृत्य सौम्यः।
कुर्यान्मनो भगवति ध्रुवमेव शान्ते ॥ ९६

भावार्थ—अपने भावों के अनुसार यथा समय विपत्तियों का और अधर्म के विकारों का मैं ही कर्ता हूं कल्याणप्रद कर्मों का स्वरूप भूत और स्वच्छ आश्रय का मैं ही केवल भोक्ता हूं ऐसा मानते हुए तटस्थ बुद्धि वाले तुम मनुष्यों के सुख दुःख सम्बन्धी दोनों भावों को छोड़

कर शान्त रूप उस भगवान् में मन को लगा दो अर्थात् निश्चित रूप से अपने मन को भगवान् का रूप बना दो क्योंकि पाप और पुण्य यदि भगवान् की इच्छा से होंगे तो मर्यादा बन जायेगी इसलिए हे जीव कर्तव्यों की भावना तब तक तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेगी जब तक तुम कर्तव्यों में सफल नहीं होते हो, तेरी भावना यदि शुद्ध भी है तो भी विचारों की दृढ़ता केवल तुम्हारा साथ देगी और तेरे से विचित्र और स्वच्छ कार्य करा सकेगी इस लिए तुम अपने आपको सुख-दुःख का कर्ता-भोक्ता नहीं मानो किन्तु व्यवस्था के कारण अपने को नट रूप जान कर कर्ता-भोक्ता भी मान सकते हो अपने स्वामी को भी नहीं भूलो सदा शुद्धता को प्राप्त करके साधारण आचरणों के साथ २ विशेषता को प्राप्त करो इन्हीं भावों से तुम ब्रह्म बन जावोगे ॥ ९६

सर्वं ह्यनात्मविभवै रचितं जगद् वै ।
शून्यैर्हि नश्वरगुणैः कलहान्वितं श्च
स्नेहं विमुग्धमवधार्य मुनिः सुखं सः ।
आच्छेद्य भावकृतिनं लभते विदित्वा ॥ ९७

भावार्थ—यह संसार आत्म विरोधी गुणों से बनाया हुआ है विनाश को प्राप्त होने वाले गुणों के द्वारा

विवादादि कुत्सित भावों से युक्त है और कृत्रिम प्रेम व्यवहारों से मोहित किए हुए इस जगत को जान कर पंचभूतों की शक्ति के भावों में चतुर इस संसार को पहिचान कर मन के भावों को मनन करने वाला योग्य साधक सुख को प्राप्त करता है अर्थात् हे जीव तुम भी मुनि की नाईं सूक्ष्म भावों को आदर्श का रूप देकर आत्म विचार के साधनों से रहित इस संसार को त्याग दो सदा ब्रह्मान्वेषण के भावों को विचारते हुए सबमें सौंदर्य को और प्रेम को देखो सदा पवित्रता से तू निर्भीक बनेगा निर्भीकता से शान्ति प्राप्त करेगा सर्वत्र कल्याण का स्रोत बन कर अपने चरित्रों के द्वारा माननीय बन जाएगा व्यसनों से दूर रहने के कारण तेरी बुद्धि विस्तृत होकर संसार के विचारों को शुद्ध करेगी। संसार के पदार्थों की ज्योति में तू व्यापकता को धारण करेगा इसी से ब्रह्म का प्रतीक बन कर तू ही प्रकाशक बनेगा। ९७

देहाद्यनात्मपदवस्तु सुधर्मभावाः।
दुःखं सुखं प्रकृतयोर्वपुषां च मिथ्या॥
वर्णाश्रमे दुरुपयोगमतिश्च मिथ्या।
सर्वेषु जन्तुषु सुचेतनता हि सत्यम्॥ ९८

भावार्थ---शरीरादि आत्म गुण विरोधी वस्तुओं के धर्म सुख-दुःख-शरीर के स्वभाविक संस्कार जन्य भावादि विकार सब ही असत्यता को धारण करते हैं अर्थात् आत्मवेत्ता के लिए यह शब्द निरर्थक हैं वर्णाश्रम धर्मों में उपयोग धर्म से शून्य बुद्धि व्यर्थ सी है सब प्राणियों में चेतन बुद्धि ही केवल सत्य है अर्थात् आत्म विचार के बिना सब जड़ता का विस्तार है इसलिए जीव तू भी चैतन्य भावों का आश्रय ले। जिससे सब प्राणियों में तेरा प्रकाश होगा यदि देहादि के धर्म ब्रह्म भावना से पृथक् हैं तो यह धर्म आततायि भावों को विस्तृत करते हैं शरीरादि की शक्ति पर यदि नियन्त्रण न किया गया तो यह शक्तियां अत्याचार करती हैं। शुद्ध मस्तिष्कके विवेक द्वारा यदि शक्तियां प्रभावित हैं तो निश्चय ही अद्भुत भावों का स्रोत बनती हैं इसलिए आत्म विवेक ही हमारी चैतन्य शक्ति का अविरल प्रवाह वाला स्रोत है जब जड़ता का अभाव हमारे कार्यों में रहता है और चेतन शक्ति कर्मों को गति और विचित्रता सिखाती है तब संसार का कण २ तुझे ढूंढ़ेगा क्योंकि गमन और सौंदर्य ही आत्मा के गुण हैं इसी से ब्रह्म की शक्ति प्रत्यक्ष भावों में आती है इन्हीं गुणों से शोभित होकर तू विलक्षण ब्रह्म बनेगा। ९८

अज्ञानदग्धहृदयाय जगच्च सत्यम् ।
सन्धार्य तत्कुरु मनो जगदीशकृत्ये ॥
ब्रह्मक्रमं य उपगम्य करोति धर्मम् ।
मुक्तः स एव निरये निवसन्ति चान्ये ॥ ६६

भावार्थ—अज्ञान रूपी अग्नि से भस्म किये हुए हृदय वाले के लिए संसार सत्य प्रतीत होता है इसलिए उस सत्य रूप ब्रह्म का निश्चय करके उस जगत के स्वामी के कार्यों में मन को लगावो । ब्रह्म की प्रेरणा और मर्यादा के अनुसार धर्म को प्राप्त करके जो अपने धर्म को करता है वह मनुष्य मुक्त ही है ब्रह्म कार्य से विमुख प्राणी नरक में निवास करते हैं इसलिए हे जीव सदा दुखों के विनाश के लिए आत्म निरीक्षण के साथ २ संसार की व्यवस्था को बनावो और सदा ही ब्रह्ममय भावों का विचार करो क्योंकि ज्योति ही सब की प्रेरक है ज्यों २ दुःख रूपी अन्धेरा होगा ज्योति हमारा मार्ग स्पष्ट करेगी इसलिए विपत्तियों से तू न घबरा, किन्तु आत्मशोध और आत्म शुद्धि का उपाय सोच । चरित्र तुम्हारे जीवन का चालक होगा जहां आदर्श के प्रति दृढ़ता है वहां अभिनेता ही नायक बन जाता है इस परिश्रम के साथ २ आत्म प्रेरणा ही तुम्हारा शुद्ध साधन है पशुता की प्रवृत्तियां सदा

विपत्ति दिखाती हैं क्योंकि भोग की भावना मनुष्य के लिये मृत्यु है और उसी के लिए उपयोग की भावना का भोग अमृत है इस पराधीनता से पृथक् होकर स्वामित्व का पालन करो इसी से तुम ब्रह्म बन जावोगे अपना रूप स्वयं देखोगे अपने विचारों से अपना उत्थान तुम कर सकते हो। ६६

मिथ्या ह्यनात्मगुणिनो जगतां पदार्थाः।
ब्रह्मैव सत्यमपरं भुवनस्य भोक्ता॥
सर्वं विहाय मनुजः प्रणयं विदध्यात्।
सर्वैश्च विश्वसुगतिस्तु भवेत् सुमानी॥ १००

भावार्थ—सम्पूर्ण जगतों के आत्म विरोधी गुणों वाले पदार्थ असत्य हैं जो संसार की रचा करने वाला है वह ही ब्रह्म सत्य है सब संसार के भावों को छोड़ कर जीव प्रेम व्यवहार को अपनाये अर्थात् सब के साथ स्नेह करे सब के साथ अपने पूर्वजों के गौरव द्वारा प्रेम व्यवहार वाला सब का कल्याण करने वाला बन सकता है अर्थात् योग्य व्यवहार को अपनाने वाला जीव सदा ही ईश्वरीय तत्त्वों को जानता है इसलिए हे जीव यदि तुम्हारे अन्दर प्रेम का विस्तार होगा तो तुम सर्वस्व भी बलिदान कर सकते

हो और अपने अन्दर अवसर प्राप्त बुद्धि धारण करके सब प्राणियों के सुख-दुःख विभक्त कर सकते हो यदि। तुम्हारे अन्दर शिथिलता-उत्साह हीनता और समालोचना की भावना होगी तो तुम अपने कर्तव्यों को भूल कर पशुता में मिल जावोगे तुम्हारा जीवन विकसित न होकर मन्द भावों वाला बन सकता है इसलिए विवेक शील होकर व्यापक बन जावो गुणों द्वारा तुम ब्रह्म बन जावोगे तुम सब को आश्रय कल्याण की भावना से बनोगे ॥ १००

मध्याऽवसानविरतो भुवि चादिदुःखैः।
व्याजव्यथायुतमिदं तु परित्यजन् त्वम्।
अन्वेषणे च सुधियां गतजन्म कार्यः।
तद् व्याहरंश्च सुवचो भज विश्व बन्धुम् ॥ १०१

भावार्थ—संसार में आदि-मध्य और अन्त के दुःखों से उपरामता को प्राप्त करता हुआ विविध प्रकार के कपट के दुःखों से युक्त इस संसार को तू छोड़ता हुआ बुद्धिमानों के ढूंढने में ही अपने जन्म को सफल करता हुआ अर्थात् बुद्धिमानों के विचारों के साथ २ अपना उत्थान करके जन्म के काल को सार्थक करता हुआ उस ईश्वर के तत्त्व वाली मधुर वाणी को कहता हुआ उस विश्व के स्वामी

भगवान् को तू स्मरण कर । अर्थात् सब प्रवृत्तियों को छोड़ दे केवल परमात्मा के तत्त्व में मन को लगा दे । हे जीव संसार के प्रति तेरा उत्साह ही तुझे शिथिल बना देगा क्यों कि परिश्रम की विफलता जीवन की बाधा होती है इसलिए आत्म प्रेरणा से किया हुआ संघर्ष तुझे केवल सफल बना सकता है क्योंकि आत्म विचार से किया हुआ उत्साह सदा ही बढ़ता है चरित्र हमारे जीवन को सत्य माग दिखा सकता है जिस चरित्र का व्यवहार हमारे सूक्ष्म विचारों को एक सूत्र में बान्ध देता है और हमारे अन्दर शुद्ध ज्योति उत्पन्न करता है वह चरित्र साधुजनों के सहवास से उत्पन्न होता है इसलिये हे जीव ईश्वरीय कर्तव्यों को विचार करके केवल ब्रह्म में तन्मय होना सीखो तुम भी ब्रह्म का कार्य बन कर जीवों के पूज्य बन जावोगे यही उत्साह तुम्हारा साथ देगा ।। १०१

नैजं हि कृत्यमनघं वसतां च पार्श्वे ।
बुद्ध्वा मनः सुवपुषां निगदंश्च शास्त्रम् ।।
तां चिन्तयन् जनसुखस्य कथां धरायै ।
तोये यथा च कमलं विचरेत् सुमेधाः ।। १०२

भावार्थ—अपने कलङ्करहित कार्य को और अपने पास रहने वाले पुरुषों के मन को जान कर शास्त्रों के

भावों को कहता हुआ पृथ्वी के उपकार के लिए सत्पुरुषों की उस विचार शैली को सोचता हुआ जल में कमल की नाईं बुद्धि के सहवास से पवित्र बन कर जीव संसार का भ्रमण करे। अर्थात् सदा जीव सदा अपने आन्तरिक भावों को विचार करके अपने आदर्शों से संसार का कार्य करता हुआ उपकार करने वाली भावना को जानने का ध्येय बनाये। लक्ष्य भ्रष्ट जीव व्यवस्था के सौंदर्य का भाव नहीं समझता है सुन्दर व्यवस्था ही ईश्वरीय भाव है जो व्यसनी लोग बाह्य जीवन को सफल बनाने में लगे रहते हैं वह प्राकृत बन कर दुःख-सुखों के भाव देखते हैं उनकी शुद्ध भावना भी विशेष कार्य से शून्य रहती है इस लिये आत्म शोध के लिए विवेक और जितेन्द्रियता के भाव हमें सुन्दर बना कर सौंदर्य का निर्माण हमें सिखायेंगे विवेक के साथ पास रहने वालों का परामर्श हमें सतर्कता की ओर ले जायेगा नित्य ही त्याग की भावना वेदान्त का रूप बनकर शुद्ध कार्य करायेगी और हमारा जीवन सब भोगों को भोगता हुआ भी पृथक् ही रहेगा आदर्शों से सब के लिए सरल बन जायेगा इसी से हम ब्रह्म बन सकते हैं॥ १०२

तीर्थैश्च कर्मभिरसौ भववृक्षरम्यम्।
नष्टं विधातुमजरो मुदितः स्वकार्यैः॥

विद्वान् न पारयति तं सततं तपोभिः ।
पत्राद् विना तरुरयं भजते न नाशम् ॥ १०३

भावार्थ— वह जीव प्रसन्न और विद्वान् बन कर भी सुन्दर संसार रूपी वृक्ष को तीर्थों की यात्रा से अपने नियत कर्मों से नष्ट करने के लिए समर्थ नहीं है पत्रों के बिना यह संसार रूपी वृक्ष नष्ट नहीं हो सकता है अर्थात् जीव नित्य शुद्ध स्वरूप तो है केवल शारीरिक परिश्रम से नाना प्रकार की तपस्या से अपने संस्कारों को नष्ट नहीं कर सकता है इसलिए जीव संस्कारों को पवित्र बनाने के लिये गुणों के उपार्जन में ध्यान देता हुआ विविध साधका-वस्थाओं से केवल उस आत्म विकास रूपी संघर्ष को नहीं प्राप्त कर सकते हैं मनुष्य यदि प्राकृत भावनाओं से विशे-षता प्राप्त करना चाहे तो कठिन प्रतीत होगा इस लिए तपों का सञ्चय-तीर्थों की यात्रा कर्मों की योजना सदा ही आत्म प्रेरणा की अपेक्षा करती है यदि आत्म ज्योति से यह आयोजन परे हैं तो व्यर्थ वितण्डावाद बन जायेंगे और संसार के लिये कुत्सित भावों को विस्तृत करेंगे इस लिए विवेक द्वारा हमारा आन्तरिक जीवन ज्योति वाला हो जाये और आत्मा की प्रतिकूल भावनाओं से हम लोहा ले सकें ऐसे मानवोचित भाव हमें विकसित करें और हम

संसार के भृत्य और स्वामी दोनों बन कर कार्य सफलता को देख सकें तो ब्रह्म का विकास हमारी भावनाओं से होगा ॥ १०३

कुर्वन्ति जन्तव इमे कलहं न यस्मिन् ।
कालः स एव भुवि नाऽस्ति शिवाय शान्तः ॥
तस्माद् विसृज्य रचनां भवमोक्षबन्धाम् ।
ज्ञानाऽसिना श्रृणु कृतिन् मधुरं च छित्वा ॥ १०४

भावार्थ---जिस समय यह संसार के प्राणी वाद-विवाद को नहीं करते हैं संसार में प्राणियों के कल्याण के लिए वह शान्त समय प्रतीत नहीं होता है। अर्थात् शान्ति का समय संसार में है ही नहीं। संसार में मोक्ष की बाधा रूप रचना को छोड़ कर और ज्ञान रूपी खड्ग से मोह के भावों को नष्ट करके हे चतुर जीव तत्त्व भावों को सतर्कता पूर्वक सुन। अर्थात् श्रवणों से केवल ज्ञान चर्चा को सुन कर तू अपने जीवन के तत्त्व को विचार। अर्थात् सत्ता के बिना विचरण शक्ति से शून्य तू अपनी सत्ता को प्रगट कर। अन्यथा ईश्वरीय भाव कहां विस्तृत होंगे हे जीव समय यदि तेरी अपेक्षा करे तो तू मानवता प्राप्त कर सकेगा विविध बाधाओं की तरंगें तुझे व्यसनों के द्वारा बांधेंगी किन्तु यदि आसक्ति तेरे से पृथक् है तो

विवेक तेरा साथ नहीं छोड़ेगा और तुम व्यापक ब्रह्म बन जावोगे प्राणियों के गीतों के द्वारा गाये जावोगे और संसार के प्राणी तेरा अनुकरण करके मोक्ष मार्ग को नहीं भूल सकेंगे तेरी धारणा अमरता का पक्ष लेकर तेरे विरुद्ध भावनाओं को दूर कर देंगी इसलिये तू सब ओर विशेष रूप से श्रवणेन्द्रिय को विस्तृत कर दे। फिर आर्त मनुष्यों के लिए कल्याणका मार्ग बता सकेगा यही तेरी तपस्या अमरता को प्रकट करेगी ज्ञान को व्यक्त करके तू सब के लिए प्रिय होगा ॥ १०४

चित्ते सदैव रचिता त्रिगुणैश्च सृष्टिः ।
मिथ्या जगन्मनसि धारय सांख्यवृत्तिः ॥
भेदं प्रक्षिप्य कुरु चात्मनि संप्रयोगम् ।
त्वं प्राणिनां ननु हिताय चराऽभ्रमी सन् ॥ १०५

भावार्थ—मन में सदा ही सत्त्व-रज-तमादि तीनों गुणों के द्वारा सृष्टि बनी हुई प्रतीत होती है सांख्य वृत्ति को अपनाने वाला तू जगत् को असत्य जान। भेद भावों को दूर करके आत्मा में ब्रह्म के सहवास को कर ले। जीवों के लाभ के लिए भ्रान्तियों को छोड़ता हुआ तू विचरण कर। हे जीव तेरी मन की कल्पना से यह संसार बनाया हुआ है और तेरी ही कल्पनासे नष्ट होगा इस लिए

अपनो कल्पना को तुम आत्मा की प्रेरणा से ओत प्रोत करो जिससे तुम उच्चाभिलाषा में अपनी महत्त्वाकांक्षा को परिणत करोगे और वर्षों की कल्पना सत्यासत्य का निर्णय कर देगी तेरे भाव सदा ही ईश्वरीय धारा में पवित्र होकर जीवों का भी कल्याण करेंगे सदा तू अभिन्न रूप से सब का आदरणीय ब्रह्म बनेगा यदि भिक्षु और स्वामी के भावों को समयानुसार उपयोग करोगे तो तेरे भीतर विलक्षणता पैदा हो जायेगी सदा ब्रह्म का विधान तुम्हें सुन्दर आकर्षण केन्द्र बना देगा इसी से संसार के बहुरूप में विस्तृत होकर भी अद्वैतता को नहीं छोड़ेगा तेरे विविध विचार तुझे भेदों के आवर्त में गिरा कर प्राणियों के घातक बन सकते हैं इससे तू अद्वैत भाव को भूल जाएगा इस लिए तू सदा ही ब्रह्म का स्मरण कर स्वयं भी उसमें मिल जावो यही बड़ा मार्ग है। १०५।

त्वं सत्यतां भवपदे परिहाय प्राणिन्।
ब्रह्मैव तन्मयमना जगति प्रयातः
ज्ञात्वा जगद् गतजनि र्व्ययशीलभावम्।
तत् प्राप्नुहि प्रकटितो विरतो भवेभ्यः ॥ १०६

भावार्थ—हे जीव संसार में पदार्थों की सत्यता को अर्थात पदार्थ सम्बन्धी स्थूलता को छोड़ कर विविध कार्यों

को करते हुए आनन्द मन वाले ब्रह्म को प्राप्त करते हुए जन्मान्तरों के बन्धनों से मुक्त होकर दुरुपयोग वृत्ति वाले जगत के भाव को जान कर संसार से उदासीन होकर लोगों के कल्याण के लिए प्रकट हुए २ तुम उस ब्रह्म को प्राप्त करो। जिसने यह प्रपंच तेरी प्रसन्नता के लिए पैदा किया है सदा यदि तेरा भाव रक्षण शक्ति को अपनायेगा तो तुम संसार के शिरोमणि बन कर आकर्षण केन्द्र बन जावोगे संसार के लिए व्यवस्था का रूप देकर प्रसन्नता पूर्वक क्रीड़ा करो और साधनों का संग्रह भी करो किन्तु ब्रह्म की ज्योति के साथ २ विचरण करो अन्यथा कृत्रिम तमस्काण्ड भी तेरी चित्तवृत्ति को भ्रान्त कर देगा तुम सुन्दर और स्वस्थ बनने का परिश्रम करो बाह्य और अभ्यन्तर तुम्हारा शुद्धता और एकता वाला हो। संसार के लिए अपने सर्वस्व को सब में व्यापक कर दो इसी से अद्वैत भाव विस्तृत होगा। तुम भी सदा सत्य बन जावोगे। १०६

निद्रागतेर्जनकथासुरुचेरमोघम्।
व्यर्थं च जल्पनगुणात् सुखदुःखकार्यात्॥
एवं विस्मृतेरुपरतिं हि निधाय नित्यम्।
कालं विशुद्धमनसे विनयैः प्रदध्यात्॥ १०७

भावार्थ– निद्रा के व्यवहार से जनकथा की रुचि से व्यर्थ वादविवाद के भावों से सुख दुःख के कार्य से विस्मरणादि पाप रूप शक्ति से उपरामता को प्राप्त करके विनय भावों के साथ २ शुद्ध मन के लिए तुम अवसर को धारण करो अर्थात् हे जीव संसार के कार्यों के साथ यदि तुम्हारा सम्पर्क आसक्ति की भावना वाला होगा तो तुम किसी भी कार्य में सफल नहीं हो सकते हो क्योंकि इन्द्रिय जन्य कर्तव्य मोह की ओर ले जाते हैं। इसलिए सदा ही कर्तव्यों को भी दृढ़ आदर्शों में परिणत कर दो जीवन को निर्भीक और पुरुषार्थी बनाने के लिये आत्म निरीक्षण सर्व प्रथम तुम्हें अनासक्ति का पाठ पढायेगा और लोक संग्रह को भी सिखायेगा संसार सदा ही विवादों में फंसा कर सुख दुःख के कार्यों में लगा देगा भृत्य बन कर यदि तुम किसी कार्य को अपनावोगे तो कार्य निर्माण की सुन्दरता तुम्हारे से दूर रहेगी इसलिए तुम मन को पवित्र और मर्यादित बनाने के लिए केवल परिश्रम करो जो लक्ष्य तुम्हें सीधे मार्ग की ओर ले जाये वह लक्ष्य बाण की नाईं गति और चेतनता तुम्हें दे सकता है फिर गति और चेतनता वाला जीवन ब्रह्म का रूप बन जाता है इसलिए ब्रह्म की उपासना तुम्हारा उत्थान कर सकेगी। १०७

स्नेहं हि चिन्तय निजात्मगुणां सुसत्त्वैः ।
सर्वं तु चात्मनि विलोक्य मुदं जितात्मा ॥
दोषान् निजांश्च विनयन् समयं विजानन् ।
सत्यं नितान्तविधिना प्रणयं च पश्येः ॥ १०८

भावार्थ—सत्यपात्र जीवों के साथ २ स्नेह पूर्वक तुम अपने आत्म गुणों को सोचो । जितेन्द्रिय होकर सब आनन्द के भावों को अपनी आतमा में देखो । सत्य को और समय को विचारते हुए अपने दोषों को दूर करते हुए एकान्त की विधि के अनुसार प्रेम पूर्वक तुम सत्य को देखो अर्थात् एकान्त में तुम अपने दोषों पर नियन्त्रण करके सत्य का अन्वेषण करो । हे जीव चरित्र को संसार के प्राणी सदा ही चाहते हैं चरित्र से संसार का सौंदर्य द्विगुणित भाव को प्राप्त करता है चरित्र ही चुम्बक का कार्य संसार के प्राणियों के लिये करता है इसलिये उसी चरित्र को अन्तरात्मा से जोड़ने के लिये प्रेम और योगी पुरुषों का सहवास आवश्यक है अपने दोषों पर नियन्त्रण प्राप्त करना ही समय को जानना है यदि हमारा चरित्र अभ्यास और वैराग्य से सम्बन्ध रखता है तो हम निर्भीक होकर प्रत्येक पथ पर सफल हो सकते हैं। एकान्त का भाव हमें केवल सब ओर व्यापक नहीं बनाता है अपितु

प्रेम का पात्र बनाने में समर्थ है। इसलिए विचारों की पवित्रता का आरम्भ हमें विचारों से करना होगा क्योंकि सूक्ष्म चिन्तन सदा ही हमें विशालता की ओर ले जाता है इसलिए हे जीव समय की गति को शुद्ध बनाने में ईश्वरीय शक्ति का उपयोग करो। इससे तुम ब्रह्म बन जाओगे। १०८

वादाय तान्तशयनाय गतिं न दत्वा।
त्यक्त्वा च पञ्चविषयस्य च मोह निद्राम्॥
आसक्तिशून्यमुदितस्तु समत्वसेवी।
तं चिन्तयेत् तु मनुजो भुवने सदैशम्॥ १०९

भावार्थ—व्यर्थ भाषण के लिए अधिक निद्रा के लिये अपने व्यवहारों के आश्रय को न देकर अर्थात् आलस्य भावों को छोड़ कर पंच विषयों की मोहरूपी निद्रा को छोड़ कर साम्य भावों में रहने वाला आसक्ति से शून्य होने के कारण प्रसन्न हुआ २ उस समर्थ भगवान को संसार में मनुष्य स्मरण करे अर्थात् मनुष्य ब्रह्म ही को प्राप्त करने का परिश्रम करे जगत प्रायः ऐसे पदार्थों से बना हुआ है जहां व्यसनों वाली बुद्धि निवास करती है इसलिए निर्व्यसनी मनुष्य पंचभूतों पर शासन कर सकता है निर्व्य-

सनी मनुष्य को आत्म प्रेरणा अपना साधन बनाती है समगुणों के साथ २ चलने वाला ईश्वर का प्रतीक होगा। इसलिए व्यवहार ही में हम साम्यगुणों को विवेक द्वारा पा सकेंगे प्रसन्नता ही हमें अधिकार की भावना दे सकती है सदा ईश्वर का सानिध्य हमें योग्य चिन्तन सिखाता है इसी कारण साम्यव्यवस्था गुणों का आधार बन कर हमारे पीछे २ आती है पंच भूतों का प्रवाह भी योग्य स्थान में चेतनता को धारण करता है इसी से हम अद्वैत तत्त्व वाले हो सकते हैं हमारा जीवन कण-कण में व्यापक होकर सर्वत्र चरित्र का निदर्शन बन सकता है। १०६

ध्येयं मुमुक्षुभिरिदं सरलं विधेयम्।
तज्जन्मनः प्रभृति भावुकतानिदानम्॥
आमृत्युरीशचरितं हि गवेषयित्वा।
वेदान्तगामिमनुजस्तु चरेन् निवृत्तिम्॥ ११०

भावार्थ—इस ब्रह्म के लक्ष्य को मुमुक्षु जन सरलता के साथ पूर्ण करें वह ब्रह्म ही जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त हमारी श्रद्धा का कारण है इस लिये मृत्यु पर्यन्त इस ब्रह्म के चरित्रों को ढूंढ करके वेदान्त के भावों को जानने वाला मनुष्य निवृत्ति मार्ग का आश्रय करे। अर्थात् ईश्वरीय

भावों का हम अनुकरण करते हुए प्रत्येक वस्तु में उन्हीं का निदर्शन बन कर-संसार के प्राणियों के आगे सुविधा को रखें जिससे सम्पूर्ण प्राणी सदाचरणों के द्वारा विशेष सौंदर्य का आश्रय बन कर मोक्ष के प्रधान साधन बन सकें प्रत्येक क्षण जीव भय के वातावर्ण में रहता हुआ यदि उस परम पुरुष का स्मरण करेगा तो हो सकता है कि हम सर्वत्र साधनों का उपयोग करते हुए अव्यक्त को व्यक्त कर सकें। इसलिये हे जीव अपने शुद्ध भावों और व्यवहारों के साथ २ उस महान् शक्ति को न भूलो जिसके बिना हम एक पग भी नहीं चल सकते हैं क्योंकि प्रकृति का संसर्ग कभी भी तुम्हें अपना बना सकता है और तुम आत्म प्रेरणा से शून्य हो सकते हो। वर्षों की शुद्ध भावना भी तुम्हारे दृढ़ विचार न होने से नष्ट हो सकती है इसलिये विश्वास और श्रद्धा के साथ २ तू अपने को ब्रह्माराधन में लगा दे और पवित्र उदाहरण सा बन कर प्राणियों का लक्ष्य बन जा। यही अद्वैत भावना है सदा ईश्वर का स्मरण करने वाला हमारा रक्षक बनता आया है। ११०

प्रातर्यथा चिन्तयति नैजगतिं गृहस्थी।

सद्यः प्रवृत्तिसुपथो दधते प्रमोदम्॥

श्रेयःप्रदत्तमहिमा जगते च मौनी।
लब्ध्वा हि तत् स्मर मुने निजबोध रूपम् ॥ १११

भावार्थ—जैसे प्रातः काल गृह कार्यों को जानने वाला अपने आश्रय को सोचता है और शीघ्र ही प्रवृत्ति मार्ग में गया हुआ अर्थात् पुरुषार्थी बन कर प्रसन्नता को धारण करता है वैसे ही संसार के लिए मौनादि कठिन तपों को अपनाने वाला श्रेय कर्मों के द्वारा प्राणियों के लिए प्रभाव शक्ति को देने वाला उस ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करके अपनी आत्मा के बोध रूप को स्मरण करे। अर्थात् अपने कार्य की सफलता से और प्रसन्नता के द्वारा प्राणियों को प्रभावित करे। सदा ही विलक्षणता का ध्यान रखे शुद्ध संग्रहो-मर्यादा का पालक बाह्य-और आन्तरिक-भावों से बन सकता है सदा आत्म प्रेरणा उस संग्रही के साथ रहती है जो व्यवस्था को प्राणियों का आश्रय बनाता है। इसलिए हे जीव संसार में प्रवृत्ति और निवृत्ति प्रधान कर्मों का उपार्जन करते हुए तुम लोक हितैषी कृत्यों को करो अन्यथा तेरी ब्रह्म के प्रति शुद्ध भावना भी मिथ्याचार का उपदेश दे सकती है इसलिये तुम व्यवहारों में सत्य कल्पना को प्राप्त करने के लिए आत्म संतुष्टी और उपकारी परिश्रम के उपायों को विचारो। यही तुम्हारी सफलता है। १११

तां वासनां भवकृताञ्च सुशास्त्रनिष्ठाम् ।
विसृज्य चात्मनि यमी कृतकर्मयोगी ॥
सर्वं करोति भुवने न च लोकमग्नः ।
निन्दास्तुतौ हि निरतः पुरुषार्थशून्यः ॥ ११२

भावार्थ—संसार के व्यवहारों से पैदा होने वाली पवित्र शास्त्रों से कही हुई भी पाप पुन्य की उस वासना को छोड़ कर कर्मठ जीवन के द्वारा योगी के भावों को प्राप्त करके जितेन्द्रियता के भावों वाला अपने विचारों में रहने वाला सब सफलताओं को संसार में प्राप्त करता है किन्तु पुरुषार्थ के भावों से शून्य होने के कारण परनिन्दास्तुति में लगा हुआ लोक व्यवहार की आसक्ति वाला संसार में आदर्श नहीं कर सकता है अर्थात् आत्म वेत्ता ही सब कुछ उपार्जन करता हुआ संसारके लिए संस्कारमयी वासना को त्यागने का पाठ पढ़ा सकता है यदि मनुष्य कर्मठ बन कर अपने विचारों को महत्व नहीं दे सकता है और सदाचरणों से शून्य है तो वह वासना महान् योगी को भी पतित कर देगी वासना रहित लोक कृत्यों का सौंदर्य चैतन्य व्यवस्था के साथ २ आदर्श का रूप बन जाता है इसलिए हे जीव प्रथम तुम्हें अपना अन्वेषण लक्ष्य के साथ २ करना होगा

इसके अनन्तर सूक्ष्म भावों को स्थूलता में परिवर्तित करना होगा जिससे तू सदा प्रकाश की ओर जा सकता है निरन्तर सबका कल्याण चाहने वाला तू प्रसन्न होगा इसी से ब्रह्म की अद्वैत सत्ता प्रकट होकर संसार को भेद भावों से छुड़ा देगी यही तेरा सुविधा जनक उपाय है। ११२

मोघं विवादकरणं तमयोग्यभावम् ।
कृत्वा जनो व्यसनधीर्लसिताञ्च तन्द्राम् ॥
नाप्नोति सत्यविरतश्च चरितं प्रभोः सः ।
ब्रह्मैव यत्र भवति भ्रमभावशून्यम् ॥ ११३

भावार्थ—व्यर्थ वाद-विवाद को अनधिकार चेष्टा वाले भाव को और बाह्य रूप से सुन्दर लगने वाली आलस्य चेष्टा को व्यसनों वाली मति को धारण करने वाला मनुष्य प्राप्त करके सत्य नियमों से उदास हुआ २ ब्रह्म के चरित्र को नहीं जान सकता है क्योंकि व्यसनी किसी का प्रिय नहीं बन सकता है जहां मनुष्य भ्रान्तियों से रहित हो जाते हैं वहां ब्रह्म का दर्शन होता है अर्थात् मनुष्य ब्रह्म स्वरूप बन कर भ्रम रहित सुन्दर बन सकता है व्यसनों के अभाव के कारण लोक व्यवस्था में शान्ति आती है इसलिए प्रवचनों के प्रवाह विलासों की सामग्री बाह्य भावों का प्रदर्शन ब्रह्म का स्वरूप नहीं बन सकते हैं

जीव यदि आत्म दर्शन को छोड़ कर केवल स्थूलता को प्राप्त करेगा तो इन्द्रियों के भावों में नष्ट हो जायेगा मनुष्यों के साथ प्रेम ही ब्रह्मत्व को प्रत्यक्ष करा सकता है इसलिए बलिदान और त्याग की भावना नूतन भावों को सदा प्रबल करती है जोव अन्तःकरण की पवित्रता से लोक व्यवहार का तत्व जान सकता है क्योंकि भावों की तरंगें सदा स्थिरता का कार्य करती हैं यदि ब्रह्ममय निर-पेक्ष भाव व्यवहार में आते हैं तो जीव अजर अमर और व्याधियों से परे ब्रह्म ही है संसार का रक्षक है। ११३

ब्रह्मेति भावनिपुणोऽहमसौ ब्रुवाणः।
अस्मि त्वहं कृतिमतिं विनयन् मनीषी॥
सत्यं सतान्तु सुगृहश्च सुहृत् प्रजायाः।
कर्मण्यजीवनधरः सुतरां विभाति॥ ११४

भावार्थ—मैं ब्रह्म तत्त्व में निपुण हूं मैं ब्रह्म ही हूं ऐसा कहता हुआ प्रकृति के विविध चक्र को दूर करता हुआ अपने कृत्यों द्वारा प्रजा का मित्र बना हुआ विद्या के भावों का विचारने वाला सज्जन पुरुषों का आश्रय रूप पुरुषार्थी जीवन को धारण करने वाला जीव सदा शोभा को प्राप्त होता है अर्थात् उच्चाऽभिलाषा को रखने वाला जीव सर्वत्र प्रेम के द्वारा व्यापक बनने के लिए पुरुषा॰

करे और प्रकृति के विलासों से दूर रहकर अपने कार्यों को अपनाये अन्यथा प्रकृति का संसर्ग जीव के भ्रान्त भावों को पैदा करेगा मनुष्यों की सेवा प्राणीमात्र का आश्रय बनती है इसलिए जीव संसार के कल्याण के लिए सुन्दर भावों को सेवा के द्वारा प्रत्यक्ष रूप दे क्योंकि पुरुषार्थ सदा शासन करने की भावना पैदा करता है पुरुषार्थ सौंदर्य और व्यवस्था को पैदा करता है इसलिए कर्मठ मनुष्य व्यापकता को धारण कर सकता है और गुणों का स्रोत भी बन सकता है दूसरों के भावों को अपना बनाना ही शोभा का स्वरूप विस्तृत करना है अद्वैत दशा सब समय सर्वत्र शोभा को प्रकट करती है क्योंकि ब्रह्म निराकार होने से अशान्त भावों से परे है सदा सत्यगुणों का आगार है इसलिए जीव तुम अपने को सदा ही ब्रह्म कहो। ११४

स्वल्पं नभः प्रकृतिवस्तुषु यथा प्रतीतम् ।
सद्यो महानभसि नाम तथैव चात्मा ॥
ईशे विभाति परमात्मनि पुण्यतेजाः ।
दोषान् विनाशकरणे प्रयतस्व भूमौ। ११५

भावार्थ—संसार की वस्तुओं में जैसा छोटा २ आकाश प्रतीत होता है वैसे ही बड़े आकाश में आत्मा व्याप्त

है आकाश एक होते हुए भी अधिक प्रतीत होते हैं वैसे आत्मा एक होते हुए भी अनेक प्रतीत होते हैं संसार के निर्माण करने वाले उस महान ईश्वर में सब आत्मा व्याप्त हैं क्योंकि समर्थ की गति व्यापक होती है ब्रह्म व्यापक होने से आत्मा भी व्यापक है इस लिये हे जीव अपने दोषों को नष्ट करने में सम्पूर्ण यत्नों को तुम करो क्योंकि पुरुषार्थ और आत्मनिरीक्षण संसार में अभ्युदय का मूल कारण है अपने विचारों पर शासन करने वाला और यथायोग्य व्यवहार का उत्पादक जीव अपनी स्वभाविक गति को जान कर विकारों को योग्यता के साथ २ दूर करके पवित्रता का निदर्शन बनता है संसार के लिये सर्वस्व देकर भी कुछ ममता और अहंकृति को न करके शोभा का स्थान बनता है इसलिये विजातीय और कुत्सित धर्मों वाले कर्म स्वभाविक ही जीव से पृथक हैं क्योंकि जीव शान्त है और विकारों से रहित होने के कारण ब्रह्म को नाईं प्रसन्नता वाला है सदा ही पुरुषार्थी जीवन को अपना कर संसार की मर्यादा बनाने के द्वारा और अपने को ब्रह्म नाम से समझने के द्वारा सौंदर्य का स्रोत बन सकता है इसलिए दोषों पर नियन्त्रण हो जीव के अभ्युदय की प्रथम सीढ़ी है साधनों की पवित्रता से जीव ब्रह्म का प्रतीक बनता है। ११५

विध्वंसने जनसपत्नगतेर्यशस्वी ।
त्वं शोभसे परिभवन् व्यसनं विकारे ॥
देहत्रयं गवि विमुच्य विरूपभिन्नम् ।
संचिन्त्य चाऽपि तदभिन्नममुञ्च विन्द्याः । ११६

भावार्थ—प्रजा के शत्रुओं की गति को नष्ट करने में तूने यश को प्राप्त किया है विकारों में व्यसनों को तिरस्कार करता हुआ भिन्न २ अपने रूप को अर्थात् व्यवहार के कारण पृथक २ अपने रूप को और तीन देहों को छोड़कर अर्थात् सब ममताओं से रहित अपने आपको उस ईश्वर से पृथक न सोच कर उस सर्व नियन्ता को प्राप्त कर। हे जीव भाग्य वशात् कर्मों के बन्धन तेरी आत्मा का आवर्ण बन कर तुझे उन्होंने भिन्न बना दिया है। इसलिये कर्मों का विन्यास ब्रह्म की नाईं सुन्दर व्यवस्था में परिणत करते हुए तुम अपनी आवश्यकताओं को न्यून करो स्वावलम्बी जीव ब्रह्म की प्रतिमा बन कर पूज्य बन जाता है सदा ही प्रजा का रक्षण तुझे अभ्युदय की ओर ले जायेगा इसलिये जनता जनार्दन की सेवा के लिए अपने नियमों को जानते हुये अपना स्वरूप ही उस नियन्ता से मिला कर पाप पुन्य के कर्मों से पृथक होने का यत्न करो मुमुक्षु भाव के लिये जिज्ञासा अत्यन्त ही स्वच्छ वस्तु है

अन्वेषण के बिना मानव मानवोचित कर्मों को कैसे करेगा इस लिये सदा अपनी भावना को परोपकार में व्यय करो उसीसे जीव ब्रह्म का प्रत्यक्ष कारण बन सकता है क्योंकि सत्ता सर्वोपरि वस्तु है जीव की सत्ता अपरिमित होने से ब्रह्म की भावना है। ११६.

ज्ञाता समस्तजगतां रमणीयतायाः।
भिन्नं विदश्च तदभिन्नमदो विजानन् ॥
आभासवस्तुमहिमा सरलस्य कर्ता।
स्थानं गिरां जनधियांच शिवस्य राजे ॥ ११७

भावार्थ—मैं जगत की सुन्दरता का जानकार होता हुआं प्रकृति के कारण पृथक् अपने इस स्वरूप को उस परमात्मा से अभिन्न भाव वाला जानता हुआ प्रकृति वस्तुओं का महत्त्व रूप होकर और सरल भावों का कर्ता विद्वानों की वाणियों का स्थान भूत और कल्याण के भावों का आश्रयरूप होकर मैं सर्वत्र प्रकाशित हो रहा हूं यदि ऐसी प्रबल भावना जीव की सर्व समय होती है तो अद्वैतता विस्तृत होकर अशान्त संसार को शान्त कर देगी इन्हीं भावों के कारण जीव विश्व का नियन्ता बनकर कर्म बन्धनों से छूट जाता है मोक्ष का यात्री सदा प्राणियों के लि. पवित्र मार्ग का निर्माण करता हुआ सुख शान्ति का प्रसार

करता है इसलिये यथा योग्य सब का आश्रय बनकर अप-
ने कर्त्तव्यों द्वारा शोभित होता है जब मनुष्य मानवता का
कार्य करता है तो संसार उसे केन्द्र बिन्दु मान कर उस
मानवोचित पुरुषार्थों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है
इसलिये हे जीव तुम अपने को प्रकाशक और नियन्ता
समझो प्रकृति के विलास और सम्पूर्ण क्रीड़ास्थल तेरे होंगे
यदि तुम उनका उपयोग जान सकते हो। ११७

ज्ञानञ्च भेदकरणस्य विलास ईहाम् ।
ब्रह्माऽपनीय विचर त्वधिगम्य विश्वे ॥
तस्माद् ऋते हि पुनरागमनस्य चक्रात् ।
मोक्षस्तु दुर्लभ इहाऽपि सुखंहि नृणाम् ॥ ११८

भावार्थ—भेद की सामग्री के ज्ञान को विलासों में
विविध प्रकार की इच्छा को छोड़कर और संसार में ब्रह्म को
प्राप्त करके हे जीव तुम विचरण करो उस प्राप्ति के बिना
इस पुनरागमन के चक्र से मनुष्यों का सरलता पूर्वक छुट
कारा दुर्लभ है अर्थात् जीव जब तक ब्रह्म भावना के बिना
विचरण करता है तब तक उसे कठिनाईयों का सामना
करना होगा मनुष्यों के साथ सहानुभूति पूर्वक बर्ताव
करना ही ब्रह्म का मार्ग है सुन्दरता का निर्माण जीव
की योग्यता का प्रतिबिम्ब है इसलिए मोक्ष का यात्री सदा

को अपने कर्मों को व्यापकता का रूप देवे चरित्र से ओत प्रोत कृत्य वाला जीव दृढ़ विचारों की ओर जाता है इस लिए पवित्र भाव को रखने वाला जीव ब्रह्म की साम्यता को विस्तृत करता है साम्यता से मनुष्य शांत वातावर्ण का स्रोत बनता है इस लिये जीव।ब्रह्म का संयोग लोगों के कल्याण को बढ़ायेगा और कठिनाइयों पर विजय पायेगा इसलिये ब्रह्ममय जीव ब्रह्म के कर्तव्यों के विना घृणास्पद बनेगा लोगों के लिए पवित्रता का निदर्शन ही ब्रह्म का प्रत्यक्ष रूप है। इसलिये तुम ज्ञान के साधनों को ज्ञान का रूप न समझते हुए अपने विचारों को ज्ञान का रूप दो ऐश्वर्य की भावना यदि उपयोग की प्रथा से सम्बन्ध रखती है तो वह ऐश्वर्य ब्रह्म का विस्तार करेगा अन्यथा सम्पूर्ण पवित्र व अपवित्र साधनों से छुटकारा कठिन है। इस लिये तुम केवल ब्रह्म का ही आधान करो। ११८

संसारसौख्यनिकरं परिहाय तस्मिन्।
चेतो व्रजेल् लयमिति व्यसनैरलभ्यम् ॥
आभासभावमनसा परिणामरम्या।
प्राप्तिर्हि मोक्षसुपदस्य गतौ ध्रुवं सा। ११९

भावार्थ—संसार के सुख को छोड़ कर व्यसनों के साथ २ उस परमात्मा में हमारा चित्त लय को प्राप्त हो जाये

यह कठिन सा है क्योंकि प्राकृतिक वस्तुओं के व्यवहार में निपुण मन से सुन्दर परिणाम वाला मोक्ष स्थान की प्राप्ति इस संसार में निश्चित है अर्थात मानसिक साधनों के साथ २ पवित्रता से ही मोक्ष पद सरल होगा इसलिए जीव केवल शरीर रूपी यन्त्र को विचार रूपी गुणों से आधीन करे उसमें विजातीय व विकृति वाला पदार्थ शरीर यन्त्र को कुत्सित न करे इसी बात का यदि जीव सोचे तो हो सकता है, कि जीव अपने चैतन्य वाले मन को सत्यता की ओर ले जाय हम संसार के पदार्थों को अपना साधन बना कर सूक्ष्म भावों का यदि व्यवहार सीखें तो संसार की प्रत्येक वस्तु की सुन्दरता और व्यवस्था से लाभ उठा सकते हैं मोक्ष सदा ही मानसिक व्यवस्था से प्राप्त हो सकता है इसलिये संसार के भाव को हम अपना भाव समझते हुये अभ्युदय की ओर जा सकते हैं यदि विरक्त भाव वाले हम बन जायें और लोक व्यवहार से अनभिज्ञता के कारण कार्य सफलता को नहीं जान सकते हैं तो मोक्ष का पद हमारे से दूर है क्योंकि कर्मों की कुशलता और कर्मों का रक्षण भाव दोनों ही मोक्ष के स्वरूप हैं इसीसे मनुष्य अद्वैत बन सकता है। इसलिये तुम अपने कर्मों के प्रति अभ्यास और नियमों का पालन करो, जिससे योग और क्षेम दोनों सिद्धियां प्राप्त होंगी और तुम ही ब्रह्म का

आकार बन जाओगे ११६

देहाऽभिमानविकृतिं न विलोक्य जन्तोः ।
सौंदर्यकर्मसुगुणांश्च मनीषया त्वम् ॥
सौजन्यतत्त्वसुमतिः सुखदुःखजातम् ।
निष्ठां विधेहि जगदीशगुणेऽप्रमादी ॥ १२०

भावार्थ—हे जीव मनुष्य के शरीर अभिमान को न देखकर बुद्धि के साथ केवल सुन्दर कर्मों को और व्यवस्था को न देखकर सुख दुख से पैदा होने वाले भावों को न विचार कर उपकार के कार्यों में बुद्धि लगाने वाला तू प्रमाद के भावों से रहित हुआ २ जगत के स्वामी के गुणों में अपनी शुद्ध भावना को लगादे अर्थात हे जीव प्राणियों के, उपकार को यदि अपनालेगा तो संसार की वस्तुओं के सम्पूर्ण गुण उपकारी मनुष्य के पीछे आते हैं इस लिये प्राणियों का हित चाहने वाले मनुष्य ही ईश्वरीय भावों का अवलम्बन कर सकेंगे ईश्वर के पवित्र भावों को सीखने के लिए व्यसन रहित मनुष्य संसार में अपनी भावना विस्तृत कर सकता है इसलिए विवेक शील सदा अपने मित्रों में आत्म प्रेरणा का भाव पैदा करे क्योंकि आत्म शक्ति सब शारीरिक व मानसिक भावों पर शासन करती है इसलिये गुणों को धारण करके भी उस शक्ति का व्यक्त

रूप पैदा करो विकृति का विस्तार संसार में उपद्रव पैदा करता है साम्य व्यवस्था से यदि हम उपकार की भावना लोगों में पैदा करेंगे तो व्यवस्था के साथ २ हमें पुरुषार्थ और योग्यता का अवलम्बन करना पड़ेगा इसीसे अद्वैत सिद्धि होगी और तुम भी जीव की अवस्था को छोड़कर स्वयं अपने को ब्रह्म कहने लगोगे जिससे संसार में शान्ति का प्रसार होगा इसी चरित्र की धारा से लोग अपना कल्मष धोकर पवित्र बन जायेंगे। १२०

वेदान्त मञ्जरी का प्रथम भाग समाप्त।
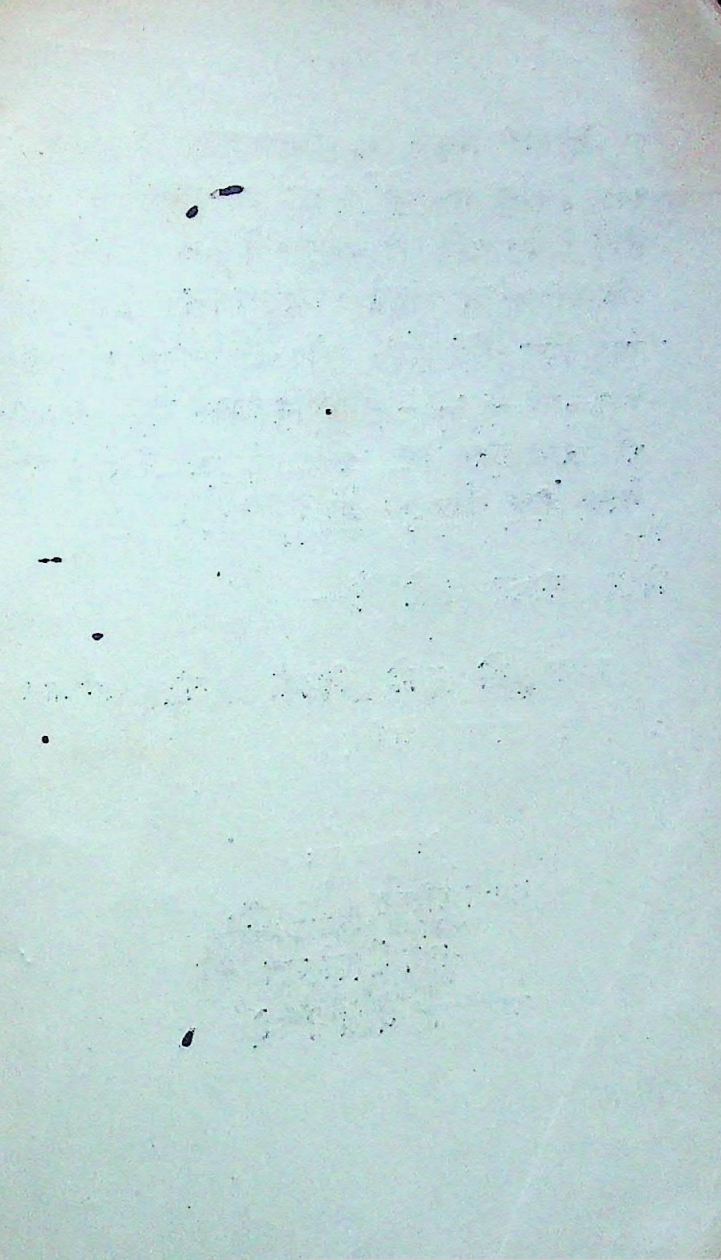
निवेदन -

स्वामी जी जैसे आत्मउत्थान के लिये शुद्ध विचार देते हैं वैसे ही शरीर शुद्धि के लिए आयुर्वेद पर उन्होंने बड़ी ही गवेषणा की है जैसे टी. बी, लकवा, मूत्रशूगर, मृगी, कुष्ट, बांझपन आदि असाध्य रोगों का वह विशेष उपचार करते हैं—

जनता को उनके विचारों और उपचारों से लाभ उठाना चाहिए।

देहली का पता: —

मार्फत पण्डित गीता राम गौड़

ग्राम सैदला जाप

डाकखाना मैहरोली, देहली।